# योगविद्या

वर्ष 7 अंक 1
जनवरी 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

**सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

**योग विद्या** मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

**बिहार योग विद्यालय**
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

---

*कुल पृष्ठ संख्या* : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

*कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो* : योग चक्र प्रशिक्षण 2017

## आध्यात्मिक मार्गदर्शन

# गुरुकुल संस्कृति

यदि हम आधुनिक शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन गुरुकुल प्रणाली से करें तो दोनों में बहुत अंतर पाते हैं। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् विद्यार्थियों को ऋषि आगे और निर्देश देते थे–'अपने कर्त्तव्य का पालन करो, सत्य से मुँह न मोड़ो। अपने कुशल-क्षेम और समृद्धि को बनाए रखो। वेदों की शिक्षाओं और ज्ञान को परिपुष्ट करो। माता और पिता तुम्हारे ईश्वर हों। केवल अनिन्द्य कार्यों को करो।'

गुरुकुल में प्रत्येक विद्यार्थी को योगासन, प्राणायाम, मंत्र, गीता, रामायण, महाभारत और उपनिषदों का ज्ञान होता था। प्रत्येक विद्यार्थी में विनम्रता, आत्म-संयम, आज्ञाकारिता, सेवा और आत्म-बलिदान का भाव, सुसभ्य स्वभाव और आत्मज्ञान प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा जैसे गुण विद्यमान होते थे। प्राचीन भारतीय संस्कृति की यह प्रमुख विशेषता थी।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
**मुद्रक** – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
**स्वामित्व** – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

# योगविद्या

**वर्ष 7 अंक 1 · जनवरी 2018**
**(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)**

## विषय सूची

4 नव वर्ष सन्देश
6 प्रसन्नता का रहस्य
9 बनो मदारी मन का
16 योग–जीवन-वृक्ष का आधार
25 साधना
34 कर्मयोग का सार
36 सत्यम् वाणी
45 योग का लक्ष्य
49 प्रारब्ध बनाम पुरुषार्थ

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

# नव वर्ष सन्देश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

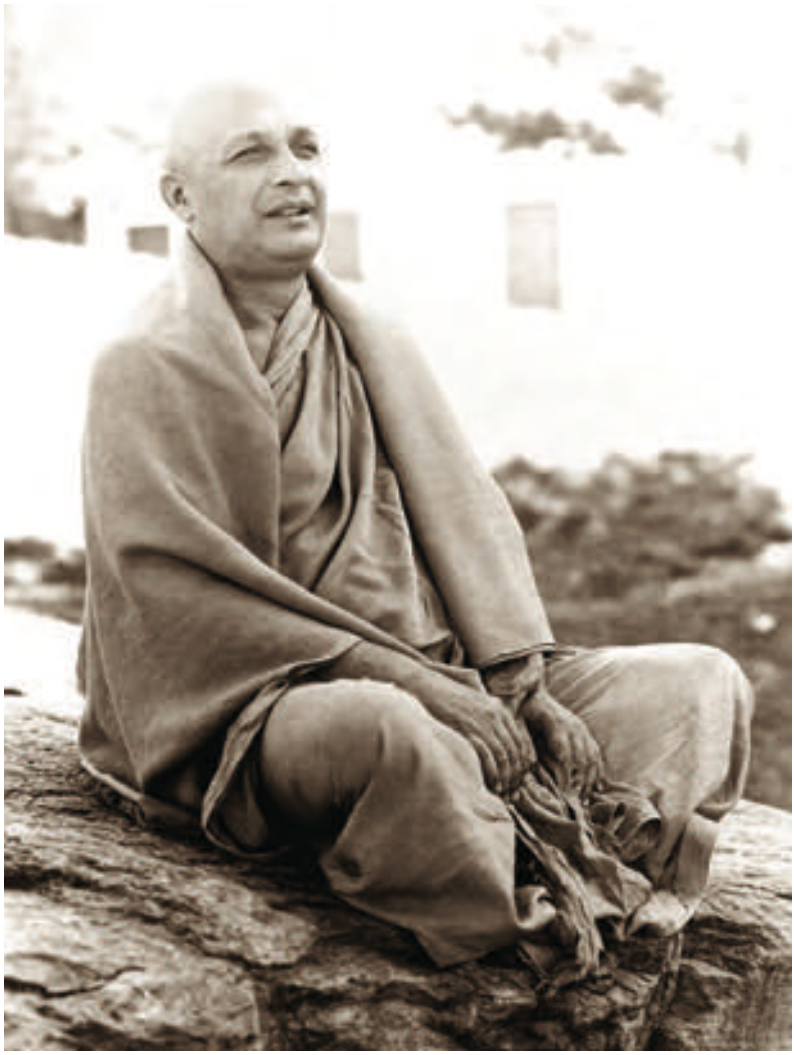

नव वर्ष का शुभागमन हो रहा है। इस पत्र प्राप्ति के कुछ दिन बाद ही नूतन वर्ष का श्रीगणेश होगा, जबकि मेरे देवगण आशीर्वाद सहित मेरी सन्तानों के हृदयों में अवतरित होंगे। वह दिवस नूतन दृष्टिकोण का जन्मदिवस हो, नई आशाओं

और नये संकल्पों का दिवस हो। नये मन, नये उत्साह और विशुद्ध अभिलाषाओं का मंगलमय जन्म हो। 1960 के उदय के साथ मेरी कामना है कि आलस्य और दीर्घसूत्रता को त्यागकर तुम्हारा भी नवोदय हो। एकवर्षीय योजना बनाकर निम्नलिखित उपस्कर एकत्र करो–

1. प्रभावोत्पादक मानवीय व्यवहार
2. दूसरों के महत्त्व की स्वीकृति
3. आनन्द, प्रसन्नता एवं चतुर्दिक मैत्री भावना
4. प्रत्येक विषय में आत्मसंयम
5. पथोन्मुखी विचारों का स्वर्णिम पुनरुदय
6. प्रिय वाणी एवं संतुलित मनोरंजन तथा
7. आत्मसाक्षात्कार हेतु अमिट उत्साह।

नया साल आता है, पुराना जाता है। नयी पत्तियाँ निकलती हैं, पुरानी झड़ जाती हैं। नवजीवन स्पन्दित होता है, पुराना तिरोहित होता है। नूतन स्वभाव उपार्जित किए जाते हैं, पुरानी आदतें छोड़ी जाती हैं। नये कार्यक्रमों का श्रीगणेश होता है, पुराने ताक में रख दिये जाते हैं। तो आज का दिन आत्मविश्लेषण, आत्मविकास, आत्म-समर्पण का है। प्रिय, बैठो, विचारो और नये संकल्प करो।

नरेन्द्र! हे श्रेष्ठ पुरुष! तुम महान् बनना चाहते हो। तुम सिद्ध बनना चाहते हो। तुम इतिहास के पृष्ठों में अमर होना चाहते हो। तुम सत्संग-लाभ चाहते हो, तुम कुछ बनना चाहते हो और कुछ करना चाहते हो। पर तुम मार्ग नहीं जानते। मैं जानता हूँ। यदि तुम महान् कार्य करना चाहते हो तो लघुतम से प्रारम्भ करो। यदि तुम महान् बनना चाहते हो, तो अति विनम्र और छोटे बनो। यदि तुम सिद्ध बनना चाहते हो तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवगुण से उन्मूलन का अभियान प्रारम्भ करो। यदि तुम कुछ बनना चाहते हो, तो 'मैं कुछ नहीं हूँ' बनो।

चिन्ता को दूर फेंको। चिन्ता एक ऐसी चीज है जो आजीवन मनुष्य को खोर-खोर कर जलाती है। चिन्ता करने वाला व्यक्ति अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकता। हमें दुनिया में कुछ करना है, ऐसा विचार कर दुनिया में खूब मस्ती के साथ रहना चाहिये। मन पर किसी प्रकार का बोझ मत डालो। चित्त को एकाग्र करने के लिए नाम और जप सदैव याद रखो। प्रतिदिन 10 से 11 बजे तक मेरे सम्पर्क में रहो।

हे सत्य के प्रिय पुत्र! तुम एकाकी नहीं हो। तुम भाग्यहीन नहीं हो। तुम इन्द्रियों के गुलाम नहीं हो। तुम अन्धेरे में नहीं हो। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ। मैं तुम्हारा जीवन-निर्माण करूँगा। तुम्हें इस सत्य के भरोसे पर हमेशा रहना चाहिये।

*–26.12.1959 को बम्बई से अपने शिष्य,*
*कैप्टन नरेन्द्र के नाम लिखे पत्र से उद्धृत*

# प्रसन्नता का रहस्य

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रसन्नता कैसे प्राप्त करें? वस्तुत: इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की यही एक प्रमुख समस्या है। प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए यह आन्तरिक खोज है। यह उस कष्ट से बचने के लिए आन्तरिक प्रेरणा है, जो जन्म से मृत्यु तक मनुष्य की समस्त गतिविधियों के लिए उत्तरदायी है। यह प्रसन्नता के लिए खोज ही है जो मनुष्य को धन, नाम, यश, शक्ति, पद तथा अन्य समस्त भौतिक सुविधाओं की ओर प्रेरित करती है। यह एक न बुझने वाली प्यास है जिसके कारण मनुष्य कारें खरीदता है, बँगले बनवाता है और बैंक में धन संग्रह करता है। किन्तु खेद का विषय है कि प्रसन्नता, जिसकी प्राप्ति के लिए वह दिन-रात प्रयत्नशील रहता है, उसे प्राप्त नहीं हो पाती।

मेरे प्यारे बच्चों! इस सत्य को जानो कि प्रसन्नता धन या सम्पत्ति पर निर्भर नहीं रहती। भौतिक संसाधनों और विषय भोगों से सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके विपरीत वे तृष्णा की वृद्धि करते हैं और चित्त को अशान्त

करते हैं। समस्त सांसारिक सुखों में भय, पीड़ा और चिन्ता मिश्रित होती है। मनुष्य निरन्तर उन चीजों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जो उसके पास नहीं हैं। प्रथम तो यह चिन्ता होती है कि वह उसे प्राप्त कर सकेगा या नहीं? जब वह उसे वास्तव में प्राप्त कर लेता है, तो वह इस बात से चिन्तित होता है कि कहीं उसे खो न दे। यदि वह उसे नहीं खोता है तो भी कुछ समय पश्चात् उसे प्रतीत होता है कि उस वस्तु में कोई आकर्षण नहीं है। तब वह दूसरी वस्तु के लिए प्रयास करता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और बुढ़ापा आ जाता है जो उसे अनन्त कष्ट में डाल देता है। प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए जिन विषय-सुखों पर उसने विश्वास किया था, वे उसे जकड़ लेते हैं और उनके असह्य भार के नीचे दबा मनुष्य चिल्ला उठता है—'प्रसन्नता कहाँ है? मैं उसे कैसे प्राप्त करूँगा?'

हे मूर्ख मानव! भ्रमित मत हो। तुम उस विशुद्ध आनन्द, अनन्त शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हो, यदि तुम अपने अन्दर सुन्दर चिन्तन, अनुभव, विचार, कर्म, वाणी, विश्वास तथा आचरण का विकास कर सको। अपने जीवन के वर्तमान तरीके को बदल दो। उसे दिव्य बनाओ। जीवन को आध्यात्मिकता की ओर ले जाओ। मैं तुम्हें वह मार्ग बतलाऊँगा जिससे तुम असीम प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हो। इस मार्ग पर निर्भय होकर चलो। हे वीर! आगे और आगे—ईश्वर की ओर बढ़ो। तुम अभी और इसी जन्म में अमर आनन्द के साम्राज्य में प्रवेश करो। इसके लिए इन उपदेशों का पालन करो—

ईश्वर का स्मरण करते हुए जागो। नींद से जैसे ही तुम उठो तो सबसे पहले उस अदृश्य, सर्वशक्तिमान् ईश्वर का स्मरण करो जो तुम में, मुझ में और विश्व के प्रत्येक कण में व्याप्त है। वे व्यक्ति धन्य हैं जो अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करने से पूर्व ईश्वर का स्मरण करने के लिए समय निकालते हैं। तुम अपने अन्तरतम हृदय से प्रार्थना और सुमिरन करो।

यदि इस प्रकार प्रार्थना करोगे तो तुम्हें अपने दैनिक जीवन के संघर्षों का सामना करने के लिए महती आन्तरिक आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी। प्रार्थना का आत्मा के लिए वही महत्त्व है जो शरीर के लिए भोजन का। शय्या से उठने से पूर्व यह दृढ़ संकल्प करो कि दिनभर कुछ-न-कुछ अच्छाइयों का पालन करोगे और फिर उनका दृढ़ निश्चय से पालन करो।

कुछ अधिक स्नेह, कुछ अधिक समझ, कुछ अधिक विचार—बस इन्हीं की आवश्यकता है जिनसे घर और संसार स्वर्ग बन सकता है। परिवार में ऐसे विवाद जो मन-मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न करते हैं, इन्हीं की कमी के कारण होते हैं। आत्म-बलिदान की भावना का विकास करो।

जब तक कोई दिव्य जीवन जीना नहीं सीखता, उसे धन-सम्पत्ति, नौकर-चाकर या गाड़ी-बँगला का कृत्रिम जीवन प्रसन्नता नहीं दे सकता।

पारस्परिक आत्म-विकास हेतु पति और पत्नी को एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए। घर के नौकरों को भी इसमें सम्मिलित करना चाहिए। इससे मन में पवित्रता और दिव्य विचार भरेंगे। अपने नौकरों से प्रेम तथा विवेक पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अपशब्दों का प्रयोग कभी मत करो।

वस्त्रों और विलासिता के मामले में धनवानों की नकल करने की चेष्टा कभी मत करो। अपने बजट को सन्तुलित रखो। फैशन करना छोड़ दो। वेश-भूषा में सादगी बरतो। अपनी आय का दस प्रतिशत दान करो। भूखे को भोजन देने से इन्कार मत करो। जितना कुछ हो सके, दूसरों के साथ बाँटो।

अपनी पत्नी को मात्र विषय-भोग का साधन मत मानो। उसके साथ आदर और प्रेम का व्यवहार करो। अपने पति को परमेश्वर मानो, उसका आदर करो, उससे प्रेम करो। बच्चे भविष्य के निर्माता हैं। वे राष्ट्र की भावी सम्पत्ति हैं। उन्हें सही प्रशिक्षण दो, उन्हें अनुशासित करो। प्रेम-मिश्रित एवं विवेक-युक्त दृढ़ता से उन्हें नियंत्रित करो। बच्चों को न तो डाँटो, न पीटो और न ही उन्हें डराओ। उनके साथ सज्जनता का व्यवहार करो।

निर्धन को सुखी बनाने, निर्बल की रक्षा करने, आपदाग्रस्त को शरण देने और रोगी की सेवा करने के लिए अधिक-से-अधिक प्रयास करो। अपने माता-पिता की सेवा करो। माता-पिता की सेवा से हृदय पवित्र होता है और प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

प्रतिदिन सायंकाल के समय भ्रमण के लिए जाने का प्रयत्न करो। यह मनोरंजक भी होगा और साथ-साथ लाभप्रद भी। सिनेमा देखने में अपना समय बर्बाद मत करो। यदि देखना ही हो, तो केवल धार्मिक और शिक्षात्मक चलचित्र ही देखो और वह भी कभी-कभी। क्लबों में जाना, ताश और जुआ खेलना बन्द करो। भोजन के पश्चात् रात्रि में आत्मोन्नति का साहित्य पढ़ो और प्रभु की हृदय से प्रार्थना करके शय्या पर जाओ। उसके पश्चात् दिनभर किये गये कार्यों का विश्लेषण करो। अपने द्वारा की गई भूलों को ढूँढो और उन्हें आगे न करने का प्रयास करो। अपने इष्ट-मन्त्र का मानसिक जप करो और चैन से सो जाओ। वे वास्तव में सुखी हैं जो निद्रा से पूर्व प्रार्थना करते हैं और उठने पर तुरन्त प्रार्थना प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति ईश्वर के हाथों में ऐसे सुरक्षित रहते हैं जैसे बच्चे माँ की गोद में।

मनुष्य का भविष्य उसके विचारों और कर्मों से बनता है। जैसा तुम सोचते हो, वैसा बन जाते हो। प्रकृति का यह अमिट नियम है। इसी क्षण से अपनी विचारधारा और मानसिक स्थिति बदल दो। अच्छे कार्य करो। सही विचारधारा का विकास करो। विशुद्ध, पवित्र इच्छाएँ रखो। घृणा, विकृत प्रेम और वासनाओं का त्याग करो। सत्य का जीवन बिताओ। दिव्य जीवन यापन करो और सदा प्रसन्न रहो। प्रभु तुम्हें अच्छा स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, शान्ति, मोक्ष और आत्म-प्रकाश प्रदान करें! ॐ तत्सत्!

# बनो मदारी मन का

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योगनिद्रा के बढ़ते प्रचार और उपयोगिता को देखते हुए इस विषय का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को हो जाना चाहिये, ऐसा मैं समझता हूँ। यद्यपि मैं योगनिद्रा को सचेत-निद्रा कहता आया हूँ, पर इसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर अब मैं सोचता हूँ कि योगनिद्रा का अभ्यास इससे भी बढ़कर है, चेतना का एक विशिष्ट आयाम है।

जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में चेतना का भिन्न-भिन्न स्वरूप होता है। महर्षि पतंजलि के राजयोग में इसे चित्त की वृत्तियाँ कहा गया है। चित्त का स्वरूप सजगता में प्रकट होता है। निद्रा चेतना का एक स्वरूप है, स्मृति अन्य स्वरूप है, उसी प्रकार योगनिद्रा भी चेतना का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप है।

राजयोग में एक अवस्था को प्रत्याहार कहा गया है। जब मन इन्द्रियों से विमुख हो जाता है तो वह प्रत्याहार की अवस्था है। प्रत्याहार की सफलता धारणा लाती है, और तब ध्यान लगता है। योगनिद्रा को प्रत्याहार का ही एक प्रकार कहा जा सकता है। योगनिद्रा का अभ्यासी सोता नहीं, उसकी चेतना जागृति की एक विशिष्ट अवस्था में सजग रहती है।

## योगनिद्रा का प्रादुर्भाव

करीब 35 वर्ष पूर्व जब मैं अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के साथ ऋषिकेश में रहता था तब मुझे एक अद्‌भुत अनुभव हुआ जो योगनिद्रा के जन्म का कारण बना। मुझे एक बच्चों के आश्रम में पहरेदार का काम दिया गया। वहाँ बच्चे वेदों का अध्ययन और पाठ किया करते थे। मैं रात भर जागता था, इसलिए सबेरे मैं झपकी ले रहा होता। कुछ महीने बाद मेरा वह कार्य समाप्त हो गया। एक साल बाद आश्रम के किसी उत्सव के उपलक्ष्य में वे बच्चे हमारे आश्रम में वेद पाठ करने आये। जब वे पाठ कर रहे थे मुझे सभी कुछ जाना-पहचाना लग रहा था, सभी

ऋचाएँ याद थीं, पर मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैंने कहाँ और कब उन्हें पढ़ा है। यह बात गुरुजी से पूछने पर उन्होंने बताया कि मैंने उन्हें निद्रित अवस्था में सुना है। यह जानकारी मेरे लिये बड़ी रोचक और प्रेरणादायक साबित हुई, तभी से मैंने योगनिद्रा पर चिंतन और प्रयोग चालू किये।

हम जानते हैं कि ज्ञान को बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु इस अनुभव के बाद मैंने जाना कि आप इन्द्रियों के बिना भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मैंने यह भी जाना कि निद्रा पूर्ण अचेतन की स्थिति नहीं होती। जब व्यक्ति गहरी निद्रा में हो तब भी उसके व्यक्तित्व का एक भाग जाग्रत होता है, उसकी चेतना का एक स्तर सचेत रहता है। मनुष्य के अन्दर कोई चीज है जो बाह्य परिस्थितियों के प्रति सचेत रहती है और उससे बड़े अद्‌भुत काम भी कराये जा सकते हैं।

उसके बाद मैंने योगनिद्रा के माध्यम से कई प्रयोग किये। मैंने पशुओं पर कई प्रयोग किये। मैंने योगनिद्रा के माध्यम से एक अलसेशियन कुत्ते को प्रशिक्षित किया। मैंने अपने कुछ शिष्यों पर भी योगनिद्रा के प्रयोग किये, साथ ही बच्चों पर भी कई प्रयोग किये। उन्हें कई विषयों का ज्ञान योगनिद्रा के माध्यम से कराया। मैंने तंत्रशास्त्र के कई अभ्यासों को देखा और योगनिद्रा नाम की एक गहन अभ्यास-प्रक्रिया तैयार कर दी। अब यह एक अन्तरराष्ट्रीय अभ्यास हो गया है।

## सचेत शिथिलीकरण

हाल ही में मैंने अमेरिका की मेनेंजर फॉउण्डेशन की एक रिपोर्ट देखी। डॉ. एल्मर ग्रीन और उनके सहयोगी शोधकर्ताओं ने इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफ के द्वारा स्वामी राम की मस्तिष्क तरंगों का अध्ययन किया। जैसे-जैसे स्वामी राम योगनिद्रा द्वारा अपने को शान्त करते गये, यंत्र ने जो तरंगें प्रकट कीं उससे वैज्ञानिक जगत् को एक नया प्रकाश मिला। वे गहरी निद्रा में लीन हो गये, किन्तु उनकी चेतना पूर्णतया सचेत थी और उन्होंने कमरे की सम्पूर्ण स्थिति का हूबहू वर्णन किया। जागने के बाद उन्होंने उन सभी प्रश्नों को दुहराया जो उनसे निद्रित अवस्था में पूछे गये थे। उनकी निद्रावस्था के इस अद्‌भुत पक्ष ने वैज्ञानिकों के लिये शोध का एक नया आयाम खोल दिया है।

जब आप योगनिद्रा का अभ्यास करते हैं उस समय आपको मालूम होना चाहिये कि आप एक महान् शक्ति का आह्वान कर रहे हैं। जाग्रत अवस्था में आपका मन छितराया रहता है। वह महान् शक्ति अभी भी आपके पास है, मगर मन छिन्न-भिन्न अवस्था में है। इसीलिए हम उस शक्ति से अनजान हैं।

मन की यह भ्रमितावस्था ऐसी है कि हमें अपनी आत्मा के अस्तित्व का भी भान नहीं। जब आप चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं तो आपको मालूम रहता है कि आप अभ्यास कर रहे हैं, किन्तु योगनिद्रा में एक ऐसी अवस्था आती

है जब आपको मालूम नहीं होता कि आप योगनिद्रा का अभ्यास कर रहे हैं। जब मन का इन्द्रियों से संबंध-विच्छेद होता है तो इसकी शक्ति द्विगुणित हो जाती है। साधारण निद्रा और योगनिद्रा में यही अन्तर है।

आज भी कई लोग सोचते हैं कि योगनिद्रा केवल विश्राम देने वाली एक प्रक्रिया है। आम आदमी को छोड़ दीजिये, वैज्ञानिकों को भी नहीं मालूम कि विश्राम वास्तव में क्या चीज है। आप बिस्तर पर जाते हैं और सोचते हैं कि आप आराम कर रहे हैं, परन्तु जब तक आप माँसपेशीय, मानसिक और भावनात्मक तनाव से मुक्त नहीं हैं तब तक आप आराम प्राप्त नहीं कर सकते। इन तनावों से मुक्ति के बाद ही वास्तविक पूर्ण विश्राम की अवस्था प्राप्त हो सकती है। योगनिद्रा के अभ्यास द्वारा आप उपरोक्त तीनों प्रकार के तनावों से मुक्त हो सकते हैं। उसके बाद जो अवस्था आती है वह शान्ति की अवस्था होती है। इस शान्ति के बाद मन स्वत: एकाग्र हो जाता है।

## ग्रहणशीलता की जागृति

गत 25-30 वर्षों से मैं योगनिद्रा पर अध्ययन कर रहा हूँ और इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सर्वप्रथम मानव की ग्रहणशीलता में वृद्धि आवश्यक है। योगनिद्रा से मन की भावनात्मक गुणवत्ता को जगाकर ग्रहणशीलता को बढ़ाना संभव है। यदि मैं आपसे कहूँ कि यह चीज गलत है, वह चीज सही है तो आप मेरी बात को भले ही स्वीकार कर लेंगे, मगर वह स्वीकृति मात्र बौद्धिक ही होगी। मेरी बात से सहमत होने पर भी आप उसे अपने व्यावहारिक जीवन में अपनाने में असमर्थ होंगे।

एक बार अपने परिव्राजक काल में मैं एक गाँव में रुका था, जहाँ मेरी मुलाकात वहाँ के एक डाकू से हुई। बहुत देर तक चर्चा करने के बाद आखिर उसने मान लिया

कि उसका जीवन सही नहीं है। डाका डालना, लोगों को त्रास देना उचित कार्य नहीं। मैं बड़ा खुश हुआ कि चलो, मैंने एक डाकू के जीवन का उद्धार किया। पाँच साल बाद मैं उसी गाँव में गया तो देखा कि उसका जीवन जैसा पहले चल रहा था वैसा ही चल रहा है, कोई परिवर्तन नहीं। तब मैंने जाना कि मैंने केवल उसकी बुद्धि को प्रभावित किया था, उसकी आत्मा को नहीं। उसके बाद मैं उस जगह करीब छः माह तक रहा। संयोगवश वह व्यक्ति भी योगनिद्रा कक्षाओं में सम्मिलित हुआ। उसे जरा भी आभास नहीं हुआ कि वह शेर की माँद में आ गया है। मुझे याद नहीं वह कितने दिन आया, पर इतना जरूर है कि उसके बाद उसने डकैती का धंधा बंद कर दिया!

बौद्धिक विश्वास मनुष्य जीवन का एक पहलू है। अच्छे-बुरे के विषय में हमने अपनी बौद्धिक मान्यतायें बना ली हैं। पर साथ ही भावनात्मक रूप से अपनी ग्रहणशीलता को बढ़ाना भी जरूरी है। यह तभी संभव है जब हम अपने मन को भ्रमों और उपद्रवों से मुक्त कर लें। जब मन स्थिर हो जाता है तब मन की भाव-तरंगें समान स्तर पर आ जाती हैं। तब मन पर जो भी प्रभाव होता है वह उसका भाग्य व पथ प्रदर्शक बन जाता है।

## बच्चों का प्रशिक्षण

मैंने बिस्तर पर पेशाब करने वाले बच्चों पर योगनिद्रा के प्रयोग किये। वे बड़े ही साधारण प्रयोग थे। एक छः वर्ष का बच्चा बिस्तर गीला कर दिया करता था। सुबह

उसकी माँ पूछती, 'तुमने ऐसा क्यों किया?' बच्चा शर्मिन्दा हो जाता, रात में माँ फिर कहती, 'आज रात बिस्तर गीला न करना।' माँ रोज कहती और बच्चा रोज ही पेशाब कर देता। मैंने उस बच्चे को अपने बिस्तर पर सुलाया। जब मैंने उसके सिर को तकिये पर रखा तो उसे एक छोटी-सी कहानी बतलायी। लम्बी नहीं, बहुत ही छोटी कहानी थी। मैंने उससे कहा, 'जब मैं कहूँ तुम हुंकारी भरना।' एक या दो मिनट के बाद उसने हुंकारी भरना बंद कर दिया। मैंने पूछा, 'तुम मेरी कहानी सुन रहे हो न?' कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। मैंने तुरंत उसे जगाया और कहा, 'जब तुम्हें पेशाब लगे मुझे उठा देना।' बस उसको सुधारने का इतना ही उपाय काफी था। मैंने इस प्रयोग को कई बच्चों पर अजमाया और उन सभी ने कुछ ही दिन के प्रयोग के बाद पेशाब करना बन्द कर दिया।

बच्चे को जब-जब धमकाया, बच्चे ने सुना, उसका भय बढ़ा, मगर आदत नहीं छूटी। पर जब वह नींद की खुमारी में था उसे नहीं मालूम पड़ा कि मैं क्या कह रहा हूँ। हो सकता है उसने मेरी बात को पूरी तरह सुना भी न हो, क्योंकि उसका दिमाग उस समय अर्धसुप्तावस्था में था। उस पर किसका प्रभाव पड़ा और मस्तिष्क की इस अवस्था और बाह्य वातावरण का आपस में क्या सम्बन्ध है? इस अवस्था में बच्चों को अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश या कोई भी भाषा सिखलाने से वे सहज ही ग्रहण कर लेते हैं।

## आधुनिक शिक्षा

आज शिक्षाशास्त्री और शोधकर्ता मनुष्य के इस गूढ़ व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर शिक्षा की नवीन पद्धति को अपना रहे हैं। बुल्गारिया की राजधानी सोफिया में इन्स्टीट्यूट ऑफ सजेस्टोलॉजी एण्ड पैरासाइकोलॉजी के अध्यक्ष डॉ.लोझानोव का सजेस्टोपेडिया का सिद्धान्त योगनिद्रा पद्धति पर आधारित है। इस पद्धति में शरीर की माँसपेशियों, मन व मस्तिष्क को गहरी विश्राम की स्थिति में लाने की जरूरत होती है। तब गहरे विश्राम और ग्रहणशीलता की अवस्था आती है। डॉ. लोझानोव ने इस पद्धति से लोगों को भाषा सिखलाने में काफी सफलता प्राप्त की। उन्होंने इस पद्धति को न्यूरोसिस के रोगियों पर भी अपनाया। यह पद्धति रक्तचाप घटाने, शल्य चिकित्सा के घावों को भरने आदि में बड़ी ही प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

योग और विज्ञान के संयुक्त प्रयोगों ने विश्व के सामने अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आधुनिक शिक्षा की नवीन पद्धति योगनिद्रा पर आधारित की गई है, मगर उसे योगनिद्रा नहीं कह सकते। इस पद्धति के अलावा आधुनिक चिकित्सा की कई नवीन पद्धतियाँ सम्मोहन प्रक्रिया के सदृश्य हैं। इन पद्धतियों में व्यक्ति को पूर्ण विश्राम की स्थिति में पहुँचा कर संदेश दिये जाते हैं, उसकी बुद्धि को पार कर सीधे अवचेतन मन को प्रभावित किया जाता है। निर्देशक की शक्ति को व्यक्तित्व का पुनरुद्धार करने में प्रयोग किया जाता है।

क्या हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व में बदलाहट लाने की जिम्मेदारी का हकदार है? क्या हमारे अन्दर दूसरे व्यक्ति में हो रहे तनावों, चिन्ता, क्रोध एवं अन्य उद्वेगों में परिवर्तन को संभालने की शक्ति है? इस जिम्मेदारी को निभाने के लिये व्यक्ति को स्वयं के तनावों, चिन्ताओं, दु:खों और परेशानियों से मुक्त होना जरूरी है, उसे मन और शरीर के सम्बन्धों का ज्ञान होना चाहिये। इसके अलावा दीर्घकाल में इन प्रयोगों का प्रयोगकर्ता पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस पर कोई वैज्ञानिक परिणाम अभी तक घोषित नहीं हुआ है।

योगनिद्रा सम्मोहन चिकित्सा से सर्वथा भिन्न है। योगनिद्रा में स्वसंदेश की अवधि सीमित होती है, उसे हम संकल्प कहते हैं। योगनिद्रा एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपने आंतरिक व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। योगनिद्रा से बाह्य ज्ञान का बीज बोने की अपेक्षा हम अपने आन्तरिक ज्ञानस्रोत का मार्ग खोल देते हैं। स्मृति, संवेदनशीलता, शिथिलीकरण, मेधा, प्रज्ञा, संयम आदि आन्तरिक गुण हैं जो प्रवाह मार्ग के अवरोधों के दूर होते ही फूट पड़ेंगे। इस आन्तरिक ज्ञान-समुद्र में गोता लगाने की कला सजगतापूर्वक सीखने पर ही संभव है। गोता लगाने की कला सरल है और किसी भी व्यक्ति द्वारा उसका अभ्यास किया जा सकता है। योगनिद्रा के अभ्यास द्वारा हमने देखा है कि मन एक स्तर पर अतिसंवेदनशील होता है। चूँकि बच्चे वयस्कों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होते हैं, इसलिए उनमें अच्छे संस्कार डालने के लिये योगनिद्रा बड़ी अच्छी प्रक्रिया है।

## चिकित्सात्मक पहलू

आधुनिक काल में योगनिद्रा को अनिद्रा, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों में बहुत ही उपयोगी पाया गया है। मैं गत पाँच वर्षों से इस विषय पर काफी अनुसंधान कर रहा हूँ। भारत के डॉ. दांते और श्रीनिवासन ने इस विषय पर काफी शोध कार्य किये हैं और उन्हें आशाजनक सफलता भी मिली है।

योगनिद्रा के विभिन्न रोगों पर प्रभाव वैज्ञानिकों के लिये रहस्योद्घाटक बनते जा रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया एवं टैक्सास के चिकित्सकों ने कैंसर रोग पर योगनिद्रा के प्रयोग किये हैं। उन्होंने विश्राम की गहरी अवस्था में काल्पनिक दृश्यों का ख्याल करने की विधि को अपनाया। उन्हें बड़े ही आशाजनक परिणाम मिले, वे अभी भी आगे के प्रयोग कर रहे हैं। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में चिकित्सक मनोरोगी के मन के भीतर दमित भावनाओं के उद्घाटन के लिये भी योगनिद्रा का सफल प्रयोग कर रहे हैं। अब तो खिलाड़ी खेल के मैदान में पदक हासिल करने के लिये योगनिद्रा का अभ्यास करने लगे हैं। वे खिलाड़ी स्व-सम्मोहित अवस्था में नहीं जाते, बल्कि आन्तरिक बल को विकसित करते हैं।

## मन के प्रशिक्षण की प्रणाली

हमें योगनिद्रा को योगस्थ मन के दृष्टिकोण में आँकना होगा। मैं नहीं कहता कि यह एक चिकित्सा पद्धति है, पर यह निश्चय ही एक ऐसी प्रशिक्षण प्रणाली है जिसके द्वारा आप चेतना की इच्छित अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया है कि जब आप योगनिद्रा का अभ्यास करते हैं तो आपका मस्तिष्क सतर्क एवं प्रोत्साहित होता है। इसमें आप शरीर के विभिन्न अंगों का ख्याल करते हैं। यह केवल उबाने वाली एकाग्रता नहीं है। जब आप शरीर के किसी अंग पर चित्त एकाग्र करते हैं तो उसका अर्थ है कि उस अंग से सम्बन्धित मस्तिष्क-केन्द्र को आप प्रभावित कर रहे हैं अर्थात् आप मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को आदेश देते हैं। मस्तिष्क के मध्य भाग से शरीर का प्रत्येक भाग सम्बन्धित होता है। हाथ, अंगूठा, अंगुली, कलाई आदि सभी अंगों का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों से होता है।

योगनिद्रा में हम शरीर को तनाव रहित करके मन को विश्राम पहुँचाते हैं। हम कहते जाते हैं—दाहिने हाथ का अंगूठा, पहली अंगुली, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली... इस प्रकार उन अंगों के साथ ही मस्तिष्क में उनसे सम्बन्धित केन्द्रों को भी तनावमुक्त करते जाते हैं। कहा जाता है कि समान स्वरलहरी द्वारा हम अपने मन में एक सम्मोहित अवस्था का निर्माण कर लेते हैं, किन्तु योगनिद्रा सम्मोहन नहीं, यह चेतना की उच्च अवस्था है। यह प्रत्याहार की अवस्था है।

महर्षि पतंजलि के राजयोग में प्रत्याहार पाँचवीं अवस्था है। जब आप इस अवस्था को प्राप्त करने में समर्थ हो जायें तब आप चाहें तो इसे स्व-चिकित्सा हेतु प्रयोग करें या चित्त को एकाग्र करने के लिये या ध्यान के लिये अथवा समाधि के लिये। प्रत्याहार के कुछ अभ्यास हैं जो मन को गहराई में ले जाते हैं। उन अभ्यासों में मन को इन्द्रियानुभूति से पूर्णत: मुक्त कर दिया जाता है। सभी इन्द्रिय अनुभवों के मन तक पहुँचने के प्रवाह मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। जब मन तक इनकी पहुँच नहीं रह जाती, तब मन को धारणा के अभ्यास के लिये तैयार जानिये और तब मन किसी एक प्रतीक पर एकाग्र किया जा सकता है।

मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि योगनिद्रा मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिवर्तन कर सकती है। आप स्वयं को योगनिद्रा सिखला सकते हैं। जीवन में कुछ भी असफल हो सकता है, मगर योगनिद्रा में लिया संकल्प कभी असफल नहीं होता। आप योगनिद्रा को किसी भी रोग की अवस्था में और पारिवारिक परिस्थिति में प्रयोग कर देखिये। आप इसके लाभों को स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

मैं योगनिद्रा को मदारी द्वारा बन्दर नचाने वाली विधि कहता हूँ। इस मनवा नामक बन्दर को प्रशिक्षित करना है। अगर इस दुष्ट, बिगड़े और अपराधी मन को सुधारना है, अगर इसे सुन्दर, मजबूत और शक्ति के भण्डार के रूप में प्राप्त करना है तो योगनिद्रा ही उचित अभ्यास है।

*—सितम्बर 1979, पेरिस, फ्रांस*

# योग–जीवन-वृक्ष का आधार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

एक बार एक माँ अपने बेटे को घर के बगीचे की देख-रेख के लिए निर्देश देती है, 'बेटा! मैं कुछ दिनों के लिए नगर से बाहर जा रही हूँ, मेरी अनुपस्थिति में तुम इस बगीचे का ख्याल रखना।' उसका बेटा सहर्ष तैयार हो जाता है। कहता है, 'माँ, मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा। जब आप लौटकर आएँगी तो देखेंगी कि आप के पेड़-पौधे खूबसूरत, स्वस्थ एवं हरे-भरे हैं।' माँ चली जाती है, और बेटा पौधों की रखवाली शुरू करता है, लेकिन जब माँ नगर से वापस लौटती है तो अपने सभी पौधों को मुरझाया हुआ, कमजोर अवस्था में देखकर बहुत निराश होती है। पूछती है, 'बेटा! तुमने यह क्या किया? सब पेड़-पौधे मर रहे हैं। तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया।' बेटे ने कहा, 'माँ, मैंने जी-जान से आपके पौधों की सेवा की। रोज कपड़े से पौधों के पत्तों, फूलों और फलों को पोंछता था। उन पर धूल नहीं जमने देता था, और अगर उनके ऊपर कीड़े वगैरह दिखलायी देते थे, तो उन्हें मार देता था, ताकि वे पौधों को हानि न पहुँचा सकें।' माँ ने पूछा, 'बेटा! तुमने मेरी अनुपस्थिति में पेड़ों की जड़ों में पानी डाला था?' उसने कहा, 'नहीं माँ। यह तो मैंने किया ही नहीं।'

यह कहानी हम सब के जीवन में घटित होती है। हम अपने जीवन में मात्र पत्ते, फल और फूल का ही ख्याल रखते हैं, जड़ का नहीं। यही कारण है कि हमारा जीवन-वृक्ष, हमारे जीवन का यह सुन्दर पौधा कमजोर रहता है, और इस पौधे में संकल्प-शक्ति, आत्मबल तथा आत्मविश्वास की कमी रहती है। इस पौधे की जड़ों में कमजोरी व्याप्त रहती है। यह पौधा रोगग्रस्त रहता है। हम अपने जीवन को सजाने-संवारने का प्रयत्न किस प्रकार करते हैं? शरीर रोगग्रस्त रहता है, तो दवाई के द्वारा शरीर को ठीक करने का प्रयास करते हैं। मन रोगग्रस्त एवं तनावग्रस्त रहता है, तो हम प्रयत्न करते हैं कि किसी तरीके से हमें मानसिक विश्राम मिले। हम बाह्य रूप से जिन परिस्थितियों का सामना करते हैं, मात्र उन्हें ही ठीक करने का प्रयत्न करते हैं।

## जड़ों की सिंचाई

विचार, व्यवहार, कर्म और संस्कार तो हमारे जीवन के पत्ते, फल और फूल मात्र हैं। जीवन की जड़ें कहीं और हैं, और जड़ों में हमने आज तक पानी नहीं डाला है। सम्भवत: यही कारण है कि मानव जीवन, समाज, देश तथा विश्व में अशान्ति एवं तनाव व्याप्त हैं। रोगों का अन्त दिखलायी नहीं देता, समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं।

जीवन में अराजकता फैल रही है। जीवन की इस जड़ को सुदृढ़ बनाने के लिए जिस जल का उपयोग किया जाता है, उसका नाम भारत के मनीषियों ने दिया है योग।

योग एक विद्या है, विज्ञान है, जीवन-पद्धति है जो हमारी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। लेकिन अज्ञान और नासमझी के कारण, या भौतिक-तकनीकी जगत् की चकाचौंध से सम्मोहित होकर हम जीवन के इस सत्य को भूल रहे हैं। हम जीवन को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते। योग-दर्शन का यह संदेश है कि जो बीता सो बीता, जो हो गया सो हो गया, लेकिन जब तुम्हारे मन में स्वयं के प्रति सजगता आती है, तब यह प्रयत्न करो कि जीवन में परिवर्तन हो। इसीलिए योग-दर्शन में विविध उपायों की चर्चा की गयी है, जिससे हमारे जीवन का सर्वांगीण विकास हो सके।

योग मात्र एक विचारात्मक सिद्धान्त नहीं है। कई बार ऐसे लोगों से हमारा परिचय होता है जो योग को मात्र वैचारिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं। गीता में योग की परिभाषा है– *योगः कर्मसु कौशलम्,* कर्म में कुशलता ही योग है। कुछ लोग कहते हैं, योग ईश्वर अनुभूति को प्राप्त करने का साधन है। कुछ लोग कहते हैं कि योग तो मात्र शरीर विज्ञान है जिससे शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है, जीवन में आरोग्य का अनुभव हो सकता है। लेकिन योग की जो विविध धारणायें हमने अपने जीवन में अपना रखी हैं, हमारे मत से वे ठीक नहीं हैं। योग एक जीवन-पद्धति है, जिसका सम्बन्ध रहता है मनुष्य के व्यक्तित्व से, क्योंकि हम यह मानते हैं कि मनुष्य के जीवन में कर्म की क्षमता, भावनात्मक संवेदनशीलता तथा मानसिक स्पष्टता–ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। अनेक मनीषियों ने कहा भी है कि मनुष्य मस्तिष्क, हृदय तथा हाथों की शक्ति का संयोजन है।

मस्तिष्क का तात्पर्य यहाँ बुद्धि से है, बौद्धिक एवं विचारात्मक प्रक्रिया से है। हृदय का सम्बन्ध शरीर के किसी अंग विशेष से नहीं, बल्कि संवेदनशीलता से है, तथा हाथ का तात्पर्य यहाँ पर शरीर के हाथों से नहीं, बल्कि क्रियाशीलता एवं कर्म कुशलता से है। ये तीन अवस्थाएँ होती हैं जिनको हम योग के द्वारा एक साथ विकसित करना चाहेंगे। और यही योग का पूरा सिद्धान्त है। मनुष्य इच्छा रखता है, उसके जीवन में महत्त्वाकांक्षाएँ रहती हैं, स्वार्थ रहता है। विरले ही मनुष्य हैं जिनके विचार एवं कर्म सकारात्मक होते हैं, जिन्होंने अपने जीवन में एक लक्ष्य को स्पष्ट रूप से अपनाया होता है, जो निष्काम होते हैं, और जिनके अनुकरण से समाज की जीवन-दिशा बदलती है। निन्यानवे प्रतिशत से अधिक लोग स्वार्थमय, इच्छामय, क्लेशमय तथा वासनामय जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी दृष्टि भले ही दार्शनिक हो, लेकिन कृत्य स्वयं तक ही सीमित रहते हैं।

यहीं पर हमारे जीवन में विरोधाभास दिखलायी पड़ता है, क्योंकि हम अपने सिद्धान्तों, विचारों एवं पारम्परिक दर्शन को अपने जीवन में भली-भाँति अवतरित नहीं होने देते। यह हमारा अज्ञान है, हमारे मन एवं चेतना की बहिर्मुखी अवस्था है, जिसने हमारी दृष्टि को वृक्ष के तने, पत्तों, फलों और फूलों तक ही सीमित रखा है जिससे वह भूमि के भीतर जड़ को नहीं देख पाती। और जब जड़ें कमजोर रहती हैं, तब वृक्ष के धराशायी होने की सम्भावना अधिक रहती है।

## चित्त-वृत्तियाँ

महर्षि पतंजलि ने योग-दर्शन की प्रारम्भिक व्याख्या इस दृष्टिकोण से की है कि मनुष्य अपने जीवन की जड़ों तक पहुँचे, मात्र बहिर्मुखी दृष्टि से अपने जीवन को न देखे। वे प्रारम्भिक सूत्र में कहते हैं– *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः,* योगाभ्यासों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। अब यहीं पर उस जीवन-वृक्ष की परिकल्पना दिखलायी देती है। गीता के पन्द्रहवें अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है– *ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।* यहाँ ऐसे वृक्ष का संकेत दिया गया है जो उल्टा है, जिसकी जड़ें ऊपर हैं और शाखायें तथा फल नीचे लगते हैं। यह वृक्ष हम ही हैं। जड़ का तात्पर्य उस आत्मा, उस ईश्वरीय सत्ता से है, जो अदृश्य, अविनाशी, अचिन्त्य सत्य है। और उस परम अवस्था से जो परिणाम सूक्ष्म से स्थूल जगत् में दिखलायी पड़ता है, वह है हमारा बाह्य जीवन। बाह्य जीवन में जितनी घटनाएँ घटती हैं, वे वृत्तियाँ हैं। विचारों, भावनाओं, वासनाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं का जो रूप है, उसे हम वृत्ति कहते हैं।

जिस प्रकार एक तालाब में पत्थर फेंकने से गोल-गोल लहरें उत्पन्न होती हैं, और उनका विस्तार होता है, ठीक उसी प्रकार मन एवं चेतना की सूक्ष्म अवस्था में जब कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जब कोई विचार उत्पन्न होता है तो उसका

परिणाम स्थूल जगत् में दिखलायी देने लगता है। वृत्ति को समझाने के लिए एक और सिद्धान्त है। सबसे पहले एक विचार की उत्पत्ति होती है, विचार से इच्छा, इच्छा से योजना, योजना से पुरुषार्थ, और अन्त में कर्म तथा कर्म से पुन: विचार उत्पन्न होते हैं। इसको कहते हैं वृत्ति। सूक्ष्म तत्त्व है विचार, तथा स्थूल परिणाम है शारीरिक कर्म। वृत्ति में दोनों का समावेश होता है। वृत्ति मात्र मानसिक या सूक्ष्म नहीं होती। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण व्यक्तित्व से रहता है, क्योंकि इसकी लहरें केवल एक दिशा में नहीं, बल्कि चारों दिशाओं में फैल रही हैं। इनका निरोध हम अनुशासन के द्वारा कर सकते हैं।

यहाँ पर निरोध शब्द का प्रयोग किया गया है। महर्षि पतंजलि यह नहीं कहते कि वृत्ति का विरोध करो। वे अवरोध के लिए भी नहीं कहते, बल्कि कहते हैं निरोध करो। जीवन में ऐसी स्थिति ले आओ कि ये गोलाकार तरंगें उत्पन्न ही न हों, और तुम्हारी मानसिक स्थिति पूर्णरूपेण सन्तुलित, संयत तथा शान्त रहे। जब इस प्रकार की परिस्थिति जीवन में उत्पन्न होगी, तब तुम्हारा जीवन सुखद तथा आनन्दमय हो जाएगा। तब तुम्हारे जीवन से दु:ख समाप्त हो जाएँगे। यही विचारधारा है जिससे योग की उत्पत्ति होती है। यही विचारधारा है जो इस सिद्धान्त को समझा रही है कि हम पत्तों, फलों एवं फूलों से जड़ों तक किस प्रकार पहुँचें।

## योग पर वैज्ञानिक शोध

योग के रहस्य को जानने के लिए विज्ञान अनेक प्रयोग एवं अनुसंधान कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने भारत को चुनौती दी थी। कहा था कि तुम्हारी संस्कृति प्राचीन है, क्या इसमें कोई ऐसा तरीका है जिसके द्वारा आधुनिक मानव के जीवन को संयत तथा सन्तुलित बनाया जा सके? भारत के मनीषियों ने इस चुनौती को स्वीकार किया। वे योग को सामने लाए और उन्होंने कहा कि एक तरीका है। तब पाश्चात्य विज्ञान ने पुन: एक चुनौती दी। कहा कि योग तो अंधविश्वासों से भरा है, कहता है कि मंत्र जपने से मन शान्त होगा, आसन करने से बीमारी दूर हो जाएगी, मनुष्य आरोग्य प्राप्त करेगा। यह कैसे सम्भव है? करके बतलाओ। तब योग ने इस चुनौती को भी स्वीकार किया, और योग के क्षेत्र में शोध की शुरुआत हुई। सबसे पहले शोध हुआ

शरीर पर। शरीर को प्रभावित करने के लिए, शरीर में परिवर्तन लाने के लिए आसन और प्राणायाम का सहारा लिया जाता है। अष्टांग योग के ये तीसरे और चौथे अंग हैं।

आसन और प्राणायाम के अभ्यासों से आज हर व्यक्ति परिचित है। स्कूलों में इसकी शिक्षा दी जा रही है, टेलिविजन द्वारा इसका प्रचार हो रहा है। अवसर मिलता है तो हम जैसे संन्यासी भी आपको योगाभ्यासों के बारे में बतलाते हैं। योग आज तपस्वियों के जीवन से, हिमालय के जंगलों और गुफाओं से निकलकर गृहस्थाश्रम के शब्दकोश में जुड़ गया है। यह देखा गया है कि जैसे-जैसे आसन और प्राणायाम के अभ्यास से हमारा शरीर नियन्त्रण में आता है, वैसे-वैसे रोग दूर होते जाते हैं।

रोगों के निराकरण के पीछे योग का एक छोटा-सा सिद्धान्त है। मनुष्य तो भोगी है, चाहे जिस रूप में भोग करे। एक गृहस्थ अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के भोगों को देखता है, और एक तपस्वी, साधक एवं त्यागी भी अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के भोगों को देखता है। जब भोग असंयत एवं असन्तुलित हो जाता है, तब हम भोगी और रोगी बनते हैं। और जब उसी भोग को हम सन्तुलित कर पाते हैं, तब हम योगी कहलाते हैं। भोग से तो कोई मुक्त नहीं है, न हम न आप। हमें भी भोग की आवश्यकता होती है, मात्र इतना अन्तर है कि हमारे जीवन में हम प्रयास कर रहे हैं कि भोग संयत और सन्तुलित हो, और इसका नकारात्मक प्रभाव हमारे जीवन में रोग, अशान्ति, दु:ख और क्लेश के रूप में न पड़े। जब भोग की अति होने लगती है, तब रोग उत्पन्न होते हैं। दैनिक जीवन की अव्यवस्था एवं बाह्य प्रदूषित परिसर के कारण ही हम विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों का सामना करते हैं। दमा का क्या कारण है? कैंसर का क्या कारण है? मधुमेह का क्या कारण है? आप लोग कहते हैं कि आज की सबसे बड़ी बीमारी एड्स है। विज्ञान भी कहता है कि सबसे खतरनाक बीमारी एड्स है। एड्स का मतलब क्या होता है? शरीर में प्रतिरक्षक क्षमता की कमी। अरे! जब इस प्रकार का तनावग्रस्त और प्रदूषित जीवन जीयेंगे, इस प्रकार की अस्त-व्यस्त दिनचर्या अपनायेंगे तो यह निश्चित है कि हमारी जो प्रतिरक्षक क्षमता है, जिससे हम विभिन्न रोगों से संघर्ष कर सकते हैं, वह कम होगी।

आप तो एड्स एक बीमारी को कहते हैं। योग कहता है कि रोगग्रस्त जीवन ही एड्स है। प्रतिरक्षक क्षमता की कमी ही एड्स है। हम जिस आरोग्य की कामना करते हैं, उसमें यही न चाहते हैं कि हमारी शारीरिक क्षमता इस प्रकार बढ़े कि हम रोगी ही न हों, प्रतिरक्षक क्षमता में इस प्रकार वृद्धि हो कि बाहर का वातावरण तथा जीवन-प्रणाली न हमारे शरीर को प्रभावित करें, न मन को, न भावना को, और हम निरन्तर अपने जीवन में उन्नति करते जाएँ। इसी विचार को योग में वैज्ञानिक तरीके से स्पष्ट किया गया है।

भारत के अनेक स्थानों में दमा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, गठिया तथा पाचन-संस्थान एवं हृदय-संस्थान के विकारों को दूर करने के लिए चिकित्सक, बुद्धिजीवी

एवं वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं। देखा गया है कि कुछ ही दिनों में शरीर के भीतर एक सकारात्मक परिवर्तन होता है। प्राण शक्ति की वृद्धि होती है। शरीर आरोग्य प्राप्त करता है। इसी कारण हम आज योग को एक चिकित्सा विज्ञान के रूप में भी मानने लगे हैं। कोई ऐसी बीमारी नहीं है जिसका निदान योग द्वारा सम्भव न हो, बशर्ते आप सही एवं नियमित रूप से योगाभ्यासों को कर सकें। इस चुनौती में योग शत-प्रतिशत सफल हुआ है।

## योग का मनोवैज्ञानिक आयाम

तब विज्ञान ने योग के स्थूल पक्ष को छोड़कर मनोवैज्ञानिक पक्ष को आजमाना चाहा। विज्ञान कहता है कि हम मान गए कि योग से शरीर को ठीक रखा जा सकता है, क्योंकि इसमें आसन हैं, प्राणायाम हैं, मुद्राएँ हैं, बंध हैं, षट्कर्म हैं, शारीरिक विधियाँ हैं, प्रक्रियाएँ हैं, उपाय हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिक पक्ष को, यानि मन, भावना और बुद्धि को योग किस प्रकार संतुलित करेगा, यह देखें, क्योंकि अशान्ति भी तो एक बहुत बड़ी समस्या है। इसी के कारण मानसिक स्पष्टता, एकाग्रता एवं संतुलित विचारों में कमी हो रही है। नकारात्मक तत्त्व जीवन में उभरने लगे हैं।

इस उद्देश्य से पुन: योग पर परीक्षण किया गया। सर्वप्रथम हम आपको योग के कुछ उदाहरण दें कि मानव किस प्रकार तनावमुक्त हो, क्योंकि विज्ञान की यह मान्यता है कि सभी प्रकार की मानसिक अशान्ति, भावनात्मक अशान्ति और विक्षिप्तता का कारण है तनाव। इस तनाव को किस प्रकार दूर किया जाए, और साथ-ही-साथ मन की शक्ति को किस प्रकार जाग्रत किया जाए? यहाँ पर अष्टांग योग के पाँचवें और छठे अंग को योग सामने लाता है, जिन्हें हम क्रमश:

प्रत्याहार और धारणा कहते हैं। योग कहता है कि ये दो तरीके हैं जिनके द्वारा तुम अपने व्यक्तित्व की सूक्ष्म अवस्थाओं को जान सकते हो, और उन्हें संयत बना सकते हो। योग के इन दो अंगों के अन्तर्गत बहुत-सी प्रक्रियाओं का उल्लेख होता है। उदाहरण के लिए योगनिद्रा शारीरिक तथा मानसिक विश्राम की, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को विश्राम देने की एक क्रिया है। अजपाजप, अन्तर्मौन, चिदाकाश धारणा इत्यादि अभ्यास हैं, जिनके द्वारा हम मन को एक बिन्दु में केन्द्रित करते हैं, अपनी मानसिक प्रतिभा का विकास कर सकते हैं, एकाग्रता, ग्रहणशीलता एवं स्मरण-शक्ति को बढ़ा सकते हैं।

हम आपको एक छोटा-सा उदाहरण देते हैं। योग में चर्चा होती है कि मंत्र का जप करने से मन-मस्तिष्क शान्त होते हैं। इस संबंध में एक प्रयोग हुआ जिसके बारे में आपको बतलाता हूँ। स्पेन के बार्सीलोना नगर के एक अस्पताल में एक संन्यासी पर परीक्षण किया गया। अस्पताल में क्यों? इसलिए नहीं कि उस संन्यासी के साथ कोई दुर्घटना घटी थी या उसकी शल्य-चिकित्सा होने वाली थी, बल्कि एक तरीका जानने के लिए परीक्षण किया गया, जिसके द्वारा हम अस्पताल में आए हुए मरीजों के मन से भय एवं घबराहट को दूर कर सकें तथा उन्हें प्रशान्तक की आवश्यकता न हो।

जब कोई मरीज अस्पताल में शल्य-चिकित्सा के लिए जाता है तो उसके मन में हमेशा एक भय बना रहता है। अगर शल्य-चिकित्सा छोटी होती है तो वह सफल होगी या नहीं, और अगर बड़ी शल्य-चिकित्सा है तो 'ऑपरेशन थियेटर' से वापस लौटूँगा या नहीं, यह भय बना रहता है। इसके कारण उसके अन्दर घबराहट, चिन्ता तथा विषाद की अवस्था आ जाती है। इसको दूर करने के लिए आप प्रशान्तक दे सकते हैं, गोली दे सकते हैं, इन्जेक्शन दे सकते हैं, आदमी को सुला सकते हैं, लेकिन सुलाने के बाद भी उसके मन से भय एवं विषाद को दूर नहीं कर सकते। एक अचेतन तनाव तो उसके भीतर बराबर बना ही रहता है। और इस मानसिक अवस्था का प्रभाव शरीर के तन्त्र-तन्त्रिकाओं, हृदय संस्थान, रक्त-संचार, श्वसन-प्रक्रिया, स्नायविक-संस्थान तथा अन्य सभी संस्थानों पर पड़ता है।

संन्यासी को कहा गया कि किसी मंत्र का जप करो। वह चुपचाप बैठ कर 'ॐ' मंत्र का उच्चारण करने लगा। मंत्र के उच्चारण के दौरान यंत्रों द्वारा उसके मस्तिष्क के परिवर्तनों को देखा जा रहा था। जिन्होंने विज्ञान का अध्ययन किया है, वे जानते होंगे कि हमारे मस्तिष्क के भीतर चार प्रकार की विद्युत तरंगें उत्पन्न होती हैं जिनका सम्बन्ध जाग्रत, शैथिल्य, तन्मय तथा एकाग्र अवस्था से रहता है। जब हम जाग्रत रहते हैं तब हमारी इन्द्रियों एवं विचारों में चंचलता रहती है। उस समय मस्तिष्क के भीतर बीटा तरंग की प्रधानता होती है। जैसे-जैसे चंचलता कम होती है, वैसे-वैसे बीटा तरंग की आवृत्ति कम होती जाती है और अल्फा तरंग जन्म

लेती है। इस चंचलता के शान्त होने की प्रक्रिया में जब एकाग्रता की स्थिति आती है, तब डेल्टा तथा थीटा तरंगें मस्तिष्क में दिखलायी देने लगती हैं।

आज भी उस अस्पताल में हर मरीज के लिए यह अनिवार्य है कि शल्य-चिकित्सा-कक्ष में जाने के पहले वह दस मिनटों तक श्वास पर ध्यान करते हुए ॐ मंत्र का उच्चारण करे। उन्हें तो मालूम भी नहीं कि मंत्र क्या है। आप से पूछेंगे तो आप कहेंगे कि मंत्र भगवान का नाम है, लेकिन योग कहता है– *मननात् त्रायते इति मंत्रः*– वह शक्ति, जिससे मन स्वतंत्र हो जाए, मंत्र कहलाती है। मन के स्वतंत्र होने की प्रक्रिया बौद्धिक या धार्मिक नहीं, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह उदाहरण मैंने आपको इसलिए बतलाया कि इससे प्रमाणित होता है कि मानसिक तनाव को दूर करने के लिए हम मंत्र का सहारा भी ले सकते हैं, क्योंकि उससे मस्तिष्क में जो परिवर्तन होगा उसका प्रभाव हम अपने शरीर के सभी संस्थानों में देख पायेंगे। उससे शिथिलता एवं तनाव-मुक्त अवस्था का अनुभव होगा।

## जेलों में योग के प्रयोग

ऐसे योगाभ्यासों का प्रयोग स्वास्थ्य-केन्द्रों, व्यसन-मुक्तिकरण केन्द्रों तथा जेलों में कैदियों की मनोवृत्ति को बदलने के लिए भी किया गया है। एक बार हम अमेरिका की एक जेल में योग सिखलाने के लिए गए। उस समय वहाँ का जो सबसे खूंखार कैदी था, उससे हमारी मुलाकात हुई। हमने उसे यौगिक प्रक्रियाएँ सिखानी शुरू कीं। एक महीने तक उसे प्रत्याहार एवं धारणा के अभ्यास सिखाए, और वह आजीवन कारावास की सजा वाला कैदी अपने अच्छे व्यवहार के कारण छः महीने में जेल से मुक्त हो गया! वहाँ की सरकार ने उसे यह आदेश दिया कि तुम यहाँ की सभी जेलों का भ्रमण करो। उसे जेल का मुख्य योग शिक्षक बना दिया। वह आज भी अमेरिका की विभिन्न जेलों में जाकर अपने खूंखार कृत्यों की चर्चा करके बतलाता है कि अगर मेरे जीवन में परिवर्तन हुआ, संयम आया, और अपराध करने की इच्छा समाप्त हुई, तो उसका श्रेय जाता है योग को और एक संन्यासी को। जब इस प्रकार के परिवर्तन दिखलायी पड़ते हैं, तब इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि योग के पास कुछ है।

## चेतना पर अनुसंधान

अष्टांग योग के सातवें और आठवें अंग को जानने और समझने के लिए चेतना पर भी अनुसंधान हो रहे हैं। ध्यान क्या है? समाधि क्या है? जीवन में इसकी उपयोगिता क्या है? चेतना में किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं, इसे देखा जाए। क्या यह सम्भव है कि चेतना का विस्तार हो? क्योंकि विज्ञान की मान्यता है कि आज मनुष्य अपने मस्तिष्क की मात्र दस प्रतिशत क्षमता का उपयोग कर रहा है। नब्बे प्रतिशत क्षमता सुषुप्त अवस्था में है, सक्रिय नहीं है। मनोविज्ञान की भी यही

मान्यता है कि हम अपने जीवन में मन के केवल कुछ प्रतिशत का ही उपयोग करते हैं। शेष के बारे में, जिसे हम अवचेतन कहते हैं, हमें जानकारी नहीं है। हमें मालूम ही नहीं कि इसका कार्य क्या है। लेकिन योग कहता है कि ध्यान की अवस्था में इन तीन अवस्थाओं को देखा, समझा और अनुभव किया जा सकता है। और इन तीन अवस्थाओं के परे एक चौथी अवस्था की भी अनुभूति प्राप्त की जा सकती है जिसे 'तुरीयावस्था' या 'सुपरकान्शस माइन्ड' कहते हैं।

यम और नियम, जो अष्टांग योग के प्रथम और द्वितीय अंग हैं, हमारे जीवन को सकारात्मक बनाने में सहयोग देते हैं। वे हमारे जीवन की शिक्षा और आधार हैं, जिनसे व्यक्तित्व को सजाया जाता है। अष्टांग योग में पाँच यमों और पाँच नियमों की चर्चा होती है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—ये पाँच यम हैं, व्यक्तित्व के ऐसे गुण जिनके द्वारा जीवन के अन्य छुपे हुए गुण उभरते हैं। नियम हैं—शौच, अर्थात् शारीरिक और मानसिक पवित्रता; संतोष, जीवन में कामना और स्वार्थ भावना से ऊपर उठना; तप, स्वयं को शुद्ध बनाने की प्रक्रिया; स्वाध्याय, अर्थात् आत्मविश्लेषण एवं आत्मचिन्तन तथा ईश्वर प्रणिधान, अर्थात् यह मानना कि मुझसे शक्तिशाली कोई सत्ता है जो मेरे जीवन को निर्देश देती है। इन नियमों का पालन अपने व्यावहारिक एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने के लिए किया जाता है।

योग के अभ्यासों को इसी दृष्टिकोण से समझकर अपने जीवन-वृक्ष की जड़ तक पहुँचें, और उसे मजबूत बनाएँ, ताकि यह जीवन-वृक्ष हमेशा मजबूत रहे, सुदृढ़ रहे, और हम जीवन में आने वाले सभी प्रकार के आँधी-तूफानों का सामना सीना तान कर करते रहें।

*—'योग साधना माला 1' से उद्धृत*

# साधना

*स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती*

मन की ग्रंथियों को खोलने और कुंठाओं से मुक्त होने की युक्ति साधना है। सामान्यत: आप मन और बुद्धि का उपयोग जीवन की कठिन परिस्थितियों से सफलतापूर्वक निपटने के लिये करते हैं। यह एक सामान्य प्रक्रिया है, क्योंकि जब भी आपका कठिनाइयों से सामना होता है, मन और बुद्धि आपकी सहायता के लिये दौड़ पड़ती हैं। यद्यपि मन और बुद्धि दैनिक जीवन की माँग पूरी करती हैं, तथापि जहाँ तक आध्यात्मिक जीवन का सवाल है, उन्हें उच्चतर अनुभवों के लिये प्रयुक्त करना श्रेयस्कर होता है।

जब आप मन और बुद्धि का अतिक्रमण करने में समर्थ होते हैं, तब आपको अपने भीतर सहजबोध की गहन क्षमता की झलक मिलती है, जो उच्च ज्ञान का शक्तिशाली स्रोत होता है। इस पवित्र अनुभव को मन-विहीनता कहा जा सकता है, जिसमें विचार और विचारक एकरूप हो जाते हैं। उस समय विचार आप पर हावी नहीं हो सकते। यह दिव्य अनुभव कहलाता है।

अब प्रश्न उठता है कि इस स्तर तक कैसे पहुँचा जाए। ऋषि-मुनियों ने जोर देकर कहा है कि केवल पुरुषार्थ द्वारा आध्यात्मिक जीवन में कुछ पाया जा सकता है। दृढ़ संकल्प और अविराम प्रयत्न द्वारा ही साधक अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रक्रिया में निश्चय ही गुरु एक अपरिहार्य माध्यम होते हैं। उनके माध्यम से ही दिव्य ऊर्जा शिष्य के अन्दर उतरती है। गुरु आप के मार्गदर्शक, प्रेरणास्रोत और आध्यात्मिक अनुभवों के सूत्रधार होते हैं। वे शिष्य के आध्यात्मिक उत्थान को तीव्रता प्रदान करने के लिये स्वयं उसके कर्मों को ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु ऐसा केवल तभी होता है जब आप में उनके लिये अपार श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण हो, आप में आध्यात्मिक जीवन के लिये प्यास और तड़प हो।

साधना काल में आप सूक्ष्म और कारण स्तर पर अपने विचारों, वासनाओं, कामनाओं और कर्मों को नि:शेष करते हैं। इस प्रकार आप शुद्ध होकर अपनी आंतरिक कुंठाओं से मुक्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मात्र घण्टे भर की साधना के बाद आप हल्केपन, स्फूर्ति और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। आपके मन और आत्मा का बोझ हल्का हो जाता है। यह जन्म-जन्मान्तरों से आपके मन और चेतना पर बोझ बनकर पड़ा था। जिस प्रकार एक भारवाहक अपने सिर पर से भारी बोझ उतारकर हल्केपन का अनुभव करता है, कुछ वैसा ही अनुभव साधक को साधना के बाद होता है।

कर्मों का संचय तीव्र गति से होता है। सच्चाई तो यह है कि आप निरन्तर कर्मों के संस्कार संचित करते हैं। यह संचय आपके आगामी कार्यों को निर्धारित करता है। अत: संस्कारों के संचय को रोकने के लिये कुछ-न-कुछ आध्यात्मिक साधना नियमित रूप से अवश्य करनी चाहिए, ताकि इस निरन्तर बढ़ने वाले बोझ से आप चरमरा न जायें।

प्रश्न यह नहीं है कि आपकी साधना का स्वरूप क्या हो। महत्त्व इस बात का है कि जो भी साधना आप करें, वह नियमित हो। जब तक आप अपनी योग साधना में नियमित रहेंगे, भले ही आप उसे थोड़ा ही समय दें, आप अपनी आंतरिक यात्रा में बहुत आगे बढ़ सकेंगे। साधना में अनियमितता बहुत बड़ी बाधा है जिसे आपको दूर करना ही होगा, अन्यथा आपकी गति रुक जायेगी।

आध्यात्मिक खोज का लक्ष्य ज्ञान का संचय नहीं होता, उसका लक्ष्य ज्ञान का प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत अनुभव होता है। इसके लिये नियमित, निरन्तर साधना की आवश्यकता पड़ती है। यदि आप एक वर्ष नियमित साधना करें और फिर छ: माह तक सब कुछ बन्द कर दें, तो आपका यह कहना अनुचित होगा कि आपने एक वर्ष साधना की है, क्योंकि जहाँ तक अनुभव का सवाल है, आपका वह एक वर्ष का प्रयास निष्फल हो गया है। हाँ, जहाँ तक बौद्धिक ज्ञान का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि आपका समय व्यर्थ नहीं गया।

ज्ञान और अनुभव में यही मौलिक अन्तर है। ज्ञान के मार्ग पर आप उस बिन्दु से पुन: यात्रा प्रारम्भ कर सकते हैं जहाँ आप रुक गये थे, परन्तु अनुभव के लिये आपको पुन: प्रारम्भ से साधना शुरू करनी होगी। चूँकि आध्यात्मिक खोज का

अन्तिम लक्ष्य ज्ञान नहीं, अनुभव है, इसलिए आपका अपनी साधना में नियमित रहना बहुत आवश्यक है।

महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्रों में इस नियमित साधना को अभ्यास कहते हैं। उनकी मान्यता है कि अभ्यास ही मन की चंचलता को दूर करता है। गुरु आपको जो दैनिक साधना क्रम बतलाते हैं, वही अभ्यास कहलाता है। आत्मसाक्षात्कार की उपलब्धि के लिये अभ्यास बहुत मूल्यवान् बन जाता है।

आध्यात्मिक जीवन में सत्संग और स्वाध्याय बड़े सहायक होते हैं, परन्तु अंत में आपको अपने समस्त संचित ज्ञान को व्यक्तिगत अनुभव में परिवर्तित करना होगा। इसके बिना आपमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ध्यान का अनुभव पाने के लिये आपको दीर्घकाल तक प्रतिदिन ध्यान करना होगा और तभी आपको कुछ परिणाम दिखाई देगा।

संसार और समाज में आपके कुछ कर्त्तव्य और दायित्व भी होते हैं। आपका अपना व्यवसाय है, नौकरी है, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ हैं। आपका पूरा समय अपना नहीं होता। हो सकता है मीलों चलकर आप अपनी नौकरी के स्थान में पहुँचते हों, देर रात थके-मांदे घर लौटते हों। घर पर आपको भोजन तैयार करना, घर के कामकाज निपटाना तथा परिवार के सदस्यों की देखभाल करनी पड़ती हो, आपकी शक्ति इन कार्यों में समाप्त हो जाती हो। फिर इतना सब होने के बाद केवल बिस्तर ही आपको अच्छा लगता हो।

इन सब के बावजूद आपको अपनी साधना में नियमित रहने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए। यह अनुशासन बड़ा कठोर लगता है, परन्तु निश्चय ही इसका परिणाम बड़ा लाभदायक होता है। आप अपने दैनिक कार्यों से कम थका करेंगे। आपको अपने भीतर शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होगा। आपका अपने तथा दूसरों के साथ बढ़िया तालमेल और समझबूझ रहेगी। साधना प्रतिदिन आपको नई शक्ति, उत्साह और दिशा प्रदान करेगी। वे सभी अवांछित चीजें जो साधनाविहीन दिनचर्या में उत्पन्न होती हैं, आपके पास नहीं फटकेंगी।

अपने व्यस्त जीवन के बावजूद आपको नियमित रूप से साधना करनी चाहिए, भले ही आप इसके लिये कम-से-कम समय दे पायें, परन्तु इसे नियमित रूप से अवश्य कीजिये। जरूरी नहीं कि आप घंटों साधना करें, परन्तु जो भी करें उसमें नियमित अवश्य रहें। एक समय और स्थान निश्चित कर लें। फिर प्रतिदिन उसी समय तथा स्थान में साधना कीजिये। स्थान और समय का पालन बड़ा फलदायी होता है। जब आप किसी निश्चित स्थान पर दीर्घकाल तक साधना करते हैं, तो वहाँ का वातावरण आपके भीतर से निकलने वाली ऊर्जा तरंगों से आविष्ट हो जाता है। फिर बाद में जब कभी भी आप उस जगह में पहुँचते हैं, तो थोड़े ही समय में शान्ति और अन्तर्मुखता का अनुभव करने लगते हैं। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया अधिकाधिक

सरल होने लगती है। यदि कोई अन्य व्यक्ति भी उस स्थान पर पहुँच जाये, तो वह वहाँ की आध्यात्मिक तरंगों से शान्ति और पवित्रता का अनुभव करेगा।

आध्यात्मिक साधना के लिये उपयुक्त वातावरण होना चाहिए। अपने घर में कोई ऐसी जगह निर्धारित कर लीजिये, जहाँ अपेक्षाकृत कम व्यवधान पड़े। एक कंबल या आसन इस कार्य के लिये उपयोग कीजिये। साधना के लिये निर्धारित समय पर हाथ, पैर और मुँह धोकर बैठिये। धूप, दीपक या अगरबत्ती जला लीजिये। फिर स्थिर आसन में ध्यान अथवा अन्य निर्धारित साधना कीजिये।

योग के साधक होने के साथ-साथ आप समाज और परिवार के भी सक्रिय सदस्य होते हैं। इसलिये बहुत अधिक अन्तर्मुखी होने से बचें। यदि आप जरूरत से अधिक गहन साधना करेंगे, तो परिवार और समाज के साथ आपका तालमेल टूटने लगेगा। अपने दैनिक कार्यों में प्रवृत्त होने के समय आपकी इच्छा होगी कि

शान्त, एकान्त स्थान में बैठकर ध्यान की गहराई में उतर जायें। ऐसा करना उचित नहीं। हर कीमत पर आपको अपनी दोनों अवस्थाओं के बीच सन्तुलन बनाये रखना चाहिए। ऐसा न हो कि आपका आध्यात्मिक जीवन आपके सामान्य दैनिक जीवन पर हावी होकर आपको भौतिक कठिनाइयों में डाल दे। इसके विपरीत आदर्श स्थिति तो वह कहलायेगी जब आपकी आध्यात्मिक साधना आपके भौतिक, सांसारिक कार्यों में निपुणता लाये। इसके लिये नियमितता आवश्यक है, परन्तु साधना में तीव्रता या अधिकता वांछनीय नहीं है। हाँ, जब आप अवकाश में हों, आपके पास कोई दूसरा कार्य न हो, तो आप गहन साधना में लग सकते हैं।

साल में कुछ दिन गहन एकान्त साधना के लिये निर्धारित कर लीजिये, पर बाकी समय सामान्य साधना ही कीजिये। गहन साधना के इस काल में भोजन, निद्रा, एकान्तवास आदि से सम्बन्धित नियमों का सख्ती से पालन कीजिये। इस अवधि में केवल साधना ही आपका लक्ष्य होना चाहिये। इस समय मित्र, सम्बन्धी, अखबार, रेडियो, टीवी आदि से एकदम दूर रहिये। इस पूरे काल में आपका अपने साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहे। यदि घर में अथवा अन्य दूसरी जगह ऐसी व्यवस्था न हो पाये, तो किसी आश्रम, जंगल, समुद्र किनारे अथवा पर्वतीय स्थान पर चले जाइये।

जब यह गहन साधना काल समाप्त हो जाये तो अपनी पुरानी जगह लौटकर, अपने दैनिक कार्य-कलापों में पूर्ववत् संलग्न हो जाइये। अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को जाग्रत करने के साथ-साथ दैनिक कार्यों को दक्षतापूर्वक करते रहने के लिये यह युक्ति बड़ी प्रभावकारी होती है। समय-समय पर उपवास करना तथा मौन रहना भी आध्यात्मिक विकास को गति प्रदान करता है। इससे शरीर और मन की सफाई भी होती है। उपवास के पश्चात् शुद्ध शाकाहारी आहार ग्रहण कीजिये। दिन में आप फलों का रस या जल ले सकते हैं। इससे आँतों की अच्छी तरह सफाई होती है तथा शरीर और मन को नई शक्ति मिलती है। मौन द्वारा शरीर और मन को ऊर्जा तो मिलती ही है, उनकी संवेदनशीलता भी बढ़ती है। परन्तु उपवास की तरह मौन साधना अधिक नहीं करनी चाहिए। मौनकाल में योगाभ्यास, जप, ध्यान अथवा स्वाध्याय कीजिये। अपनी चेतना को इतना विकसित तथा तीव्र कीजिये कि आत्मिक स्तर पर आपका गुरु के साथ तादात्म्य स्थापित हो सके।

*– 'कर्म संन्यास' से उद्धृत*

*समस्त उच्च साधकों का परम कर्त्तव्य है कि वे अपनी आध्यात्मिक सेवा जन-कल्याण हेतु दुनिया को अर्पित करें। इसी शक्ति-सम्पन्नता के दम पर भारत आज तक अपना गौरवशाली मस्तक ऊँचा उठाये रखता आ रहा है।*

*– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती*

# कर्मयोग का सार

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मानव-जाति की निष्काम सेवा ही कर्मयोग है। 'अनवरत काम करना ही आपका कर्तव्य है, उसके फल की आशा रखना नहीं'—यही गीता का मुख्य उपदेश है।

कार्यालय में काम करते समय भी आप अपने इष्ट-मन्त्र का मानसिक जप कीजिए। ईश्वर अन्तर्यामी है। वह शरीर, मन तथा इन्द्रियों को काम करने के लिए प्रेरित करता है। ईश्वर के हाथों में निमित्त-मात्र बनिए। अपने कर्म के बदले में धन्यवाद अथवा प्रशंसा की अपेक्षा न कीजिए। कर्मों को अपने कर्तव्य के रूप में कीजिए तथा उनको और उनके फलों को ईश्वर को अर्पित कीजिए। आप कर्म के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे। कर्म नहीं, वरन् मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति ही उसके बन्धन का कारण है।

कदापि ऐसा न कहिए, 'मैंने अमुक मनुष्य की सहायता की है,' बल्कि ऐसी भावना कीजिए तथा सोचिए, 'उस मनुष्य ने मुझे सेवा का अवसर प्रदान किया। इस सेवा के द्वारा मुझे अपने चित्त की शुद्धि में सहायता मिली है। अत: मैं उसका अत्यन्त आभारी हूँ।' यदि आप अपने द्वार पर किसी निर्धन व्यक्ति को चिथड़ों में देखें, तो भावना कीजिए कि 'भगवान ही इस निर्धन व्यक्ति के रूप में मेरे सामने आये हैं।' नारायण-भाव के साथ उसकी सेवा कीजिए।

दूसरों की सेवा करते समय कभी भी झुँझलाइए नहीं। सेवा में सुख का अनुभव कीजिए। सेवा के लिए सुअवसरों की ताक में रहिए। एक भी सुअवसर को हाथ से न जाने दीजिए। कर्म ईश्वर की उपासना है।

कर्मयोगी का स्वभाव मिलनसार, प्रिय तथा मधुर होना चाहिए। उसमें सहानुभूति, आत्म-संयम, सहनशीलता, प्रेम तथा करुणा होनी चाहिए। उसको चाहिए कि वह दूसरों के स्वभाव तथा रुचि के अनुसार ही अपने-आपको ढाल ले। उसमें अपमान, कटुवचन, आलोचना, सुख-दु:ख तथा शीतोष्ण को सहन करने की शक्ति होनी चाहिए।

आप अपनी क्षमता तथा परिस्थितियों के अनुकूल निष्काम कर्म कर सकते हैं। वकील बिना फीस लिये ही गरीबों की ओर से वकालत कर सकता है। डॉक्टर बिना फीस लिये ही गरीबों का इलाज कर सकता है। अध्यापक गरीब बच्चों को नि:शुल्क पढ़ा सकता है। वह उनको पढ़ने के लिए मुफ्त पुस्तकें दे सकता है। अपने पास दवाइयों की एक पेटी रखिए जिसमें कुछ आयुर्वेदिक, एलोपैथिक या होमियोपैथिक औषधियाँ रख लीजिए। आत्म-भाव के साथ गरीबों तथा रोगियों की सेवा कीजिए। अपनी आय का दशांश दान में दीजिए। यही सबसे बड़ा योग है।

निम्न-श्रेणी के कार्य तथा सम्मानपूर्ण कार्य में कोई भी भेद न रखिए। यदि कोई व्यक्ति किसी दर्द से पीड़ित हो तो तुरन्त उस स्थान की मालिश कीजिए। ऐसा अनुभव कीजिए कि उस रोगी के शरीर में आप नारायण की सेवा कर रहे हैं। अपने इष्ट-मन्त्र का जप भी करते रहिए। यदि आप सड़क पर किसी मनुष्य या जानवर के शरीर से रुधिर निकलता देखते हैं और आपके पास कोई पट्टी नहीं है, तो अपना वस्त्र फाड़कर उसके घाव पर बाँधने में जरा भी संकोच न कीजिए। रेलवे-स्टेशन पर गरीब कुलियों के साथ पैसों के लिए झगड़ा न कीजिए। विशाल-हृदयी तथा उदार बनिए। अपने जेब में सदा कुछ पैसे रखिए तथा उनको गरीबों तथा लाचारों में बाँटिए।

कर्मयोग मन को ज्योति तथा ज्ञान के ग्रहण के लिए तैयार करता है। यह हृदय को विस्तृत करता तथा एकता के मार्ग में आने वाली सारी बाधाओं को दूर करता है। चित्त की शुद्धि के लिए यह एक प्रभावशाली साधन है। अत: सतत् निष्काम कर्म कीजिए।

# सत्यम् वाणी

*गतांक से आगे*

## योग आंदोलन में मुंगेर का योगदान

मुंगेर के लोग बहुत अच्छे हैं। दक्षिण से लेकर उत्तर तक पूरे भारतवर्ष में कितने लोगों ने योग आश्रम बनाने की, उनसे लोगों को लाभ पहुँचाने की कोशिश की, मगर मुंगेर में जैसा योग आश्रम जम पाया वह कहीं और जम नहीं पाया। इस आश्रम ने अपने प्रशिक्षण को केवल योग तक ही सीमित नहीं रखा, उसको बहुत आगे तक बढ़ाया। यह केवल मुंगेर के लोगों के सहयोग से हो पाया। जिस नगर में तुम रहते हो अगर वहाँ के लोगों का भावनात्मक सहयोग न रहे तो वहाँ कोई संस्था चल नहीं सकती। वैसे तो मुंगेर काफी प्रसिद्ध जगह है अनेक दृष्टियों से, परन्तु वहाँ के लोगों में एक विशेषता है—हम जैसे हैं, उन्होंने हमको वैसे ही स्वीकार किया। हमारी जो अच्छाइयाँ हैं या हमारी जो सीमाएँ हैं—सब को उन्होंने जस-का-तस स्वीकार किया और हमें हर दृष्टि से भरपूर सहयोग दिया।

जिस स्थान पर आज गंगा दर्शन बना है, उस स्थान का मिलना प्राय: असंभव था। वह किसी की निजी जमीन थी, साथ में बहुत-से झंझट थे। लेकिन सरकार ने कह दिया कि इसे योग आश्रम के लिए इस्तेमाल करेंगे और रास्ता साफ कर दिया। यहाँ के लोग इतनी मदद करते थे कि फैक्ट्री से सस्ता सीमेंट तक लाकर देते थे। हर तरह से मदद करते थे। गाँव के लोग गेट पर आकर कहते थे, 'स्वामीजी से कह

दो, हमारे खेत में परवल बहुत है, स्वामी लोगों को भेजकर तुड़वा लो।' हम एक-एक ट्रक परवल तुड़वाते थे। हम कभी दूध मोल लेते ही नहीं थे। नदी पार से जो दूधवाले आते थे, वे दो घड़ा दूध रोज डाल जाते थे। और हमारा उनके प्रति वैसा ही सम्मान रहा। हमने कभी भी मुंगेर के लोगों को अपराधी के रूप में नहीं देखा।

लक्ष्मीपुर दियारा में एक बार बहुत बड़ा काण्ड हुआ था। मार-पीट और हत्या हुई थी। प्रशासन के वहाँ पहुँचने से पहले हमने स्टीमर से कपड़ा, अनाज वगैरह वहाँ भेजा। हमने तो वह जगह देखी नहीं थी, पर हमने अपने चेलों से कहा, 'जाओ, वहाँ मार-पीट हो रही है। मार-पीट अपनी जगह पर है, हवालात-हथकड़ी अपनी जगह पर है, पर पेट तो सबका है न?' खाने-पीने का सामान भेजा, उनके रहने के लिए मकान बनाए, और आज वे सब हमारे पक्के चेले हैं।

सन् 1993 में जब मुंगेर में बहुत बड़ा योग सम्मेलन हुआ, तो कलेक्टर साहब ने उनको बुलाया और कहा कि बहुत बड़ा सम्मेलन होने वाला है, थोड़ी गुण्डागर्दी कम करना। उन लोगों ने कहा, 'सर, हम आश्रम से गुण्डागर्दी नहीं करेंगे। हमको आप सुरक्षा व्यवस्था में लगा दीजिए, फिर कौन क्या कर सकता है?' जब चोर-डाकू आपके मित्र हो जाते हैं तो आप पूरी तरह सुरक्षित हैं। और उस मित्रता का एक ही उपाय है—प्रेम। प्रेम के सामने कोई शर्त नहीं होती। केवल सज्जन से प्रेम करना, साधु, सदाचारी या संत से प्रेम करना—ये तो प्रेम की सीमाएँ हैं। दुराचारी से भी प्रेम करना, व्यभिचारी से भी प्रेम करना—प्रेम की फिर सीमा नहीं रहती।

हम मुंगेर में बहुत अच्छी तरह से रहे। कभी दिक्कत नहीं होती थी। इसलिए हम कहते हैं कि मुंगेर का जो आश्रम है, वह मुंगेर और बिहार के लोगों के सहयोग की वजह से है। बिहार ने केवल इस योग आश्रम को सहयोग नहीं दिया, इतिहास में भगवान बुद्ध को, भगवान महावीर को, गाँधीजी को, जय प्रकाश नारायण को, सबको सहयोग दिया है। देखा जाए तो हिन्दू दर्शन और बौद्ध दर्शन के अधिकांश विद्वान् बिहार के लोग ही रहे हैं।

## मानवता की सेवा

अब हमने मुंगेर छोड़ दिया है और यहाँ देवघर में बस गए हैं। हम अब वहाँ के बारे में नहीं सोचते, आगे की सोच रहे हैं। कहते हैं न, उठ बाँध रख सफर अपना, दुनिया की सराय को समझ रखा है घर अपना। तूने गलत समझा बाबा। यह तो हमारा रेलवे प्लेटफार्म है जहाँ हम गाड़ी का इंतजार कर रहे हैं। भगवान से हमने बोला कि हमें जाना है, पर वे बोलते हैं सब सीट रिज़र्व हो गए, थोड़ा रुको। मैं वेटिंग लिस्ट में हूँ। मैं तो यहाँ से जाने के लिए आया हूँ, लौटने के लिए थोड़े ही आया हूँ। वहाँ मुंगेर में जो भी काम किया, अपने मन के अनुसार नहीं किया। मैं तो न योग में रुचि रखता हूँ और न ही मेरी वेदान्त में रुचि है। न ही मेरी अध्ययन

में रुचि है और न ही मेरी विद्या में रुचि है। स्पष्ट बात बोल रहा हूँ। मेरी केवल एक ही रुचि है—मैं दूसरे के लिए किस तरह मददगार बन सकता हूँ।

दुनिया की आज जो समस्या है वह मुख्यत: भौतिक समस्या है। यह कहना कि संसार की समस्या आध्यात्मिक है, बहुत बड़ी बात हो जाएगी। मैं यह नहीं कहता कि आध्यात्मिक, भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक समस्याएँ नहीं हैं, मगर आज आदमी की मूल समस्या भौतिक है। इसमें कम-से-कम हिन्दुस्तान में 50 प्रतिशत से ज्यादा लोगों को सहायता की आवश्यकता है। घर के घर ऐसे हैं जहाँ शाम का खाना नहीं बनता। लाखों-करोड़ों घर ऐसे हैं जहाँ बरसात में पानी चूता है। मनुष्य साधु हो अथवा गृहस्थ, भक्त हो अथवा उपासक, ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, चाहे जो कुछ भी हो, उसका सबसे पहला कर्तव्य अभागों की सेवा है। जब हम ऋषिकेश में रहते थे, तो वहाँ जितने कोढ़ी रास्ते में बैठते थे उन सबको इकट्ठा करके कॉलोनी बना दी थी। थोड़ा इधर से लिया, थोड़ा उधर से लिया। मुझे लोग दे भी देते हैं बहुत, मुझे दिक्कत नहीं होती।

चूँकि हमारे गुरुजी ने हमसे कहा, 'योग सिखाओ' तो हमने सोचा, गुरु ऋण तो चुकाना ही पड़ता है। इसलिए मुंगेर में योग विद्यालय खोला। यह भी आपको बतला देता हूँ साफ-साफ कि मैंने योग पर कोई मौलिक ग्रंथ भी नहीं पढ़ा है। न गोरख संहिता, न हठयोग प्रदीपिका। मेरा अध्ययन रहा है वेदान्त का जो मैंने कैलाश आश्रम में सीखा। शंकर-भाष्य वगैरह सब पढ़ा पर कभी वेदान्त सिखाया नहीं किसी को। मुझे लगता है कि सिखाकर क्या करूँ। जिस घर में रोटी नहीं है वहाँ तो 'भूखे पेट भजन न होय गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला' वाला हिसाब

है। हिन्दुस्तान के 70 प्रतिशत लोगों का जीवन कृषि पर आधारित है, और यह पूरे का पूरा उपेक्षित वर्ग है।

**क्या कीर्तन और सतत् सुमिरन के द्वारा एक भक्त भगवान के साथ निरंतर सम्पर्क में रह सकता है?**

भगवान का कहना है कि न तो मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ, न ही योगियों के हृदय में। जहाँ भी मेरे भक्त मेरे नामों को गाते हैं, मैं वहीं रहता हूँ।

*नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।*
*मद्भक्ता: यत्र गायन्ते तत्र तिष्ठामि नारद॥*

तो जब तुम भगवान का नाम गाते हो अवश्य ही वे तुम्हारे साथ होते हैं और तुम उनके साथ। न वे अकेले हैं, न तुम। वरना भगवान तो अकेले हैं बेचारे, कोई उनके साथ है नहीं, कोई उनको जानता नहीं, उन्हें अज्ञेय बोलते हैं। इसलिए भगवान ने कहा– *एकोऽहं बहुस्याम:*। प्रकृति और उनका संपर्क हुआ, एक से बहुत बन गए, बस लीला शुरू हो गई।

देखा जाए तो भगवान कृष्ण भी अकेले थे। जब वे वृन्दावन-मथुरा को छोड़कर द्वारिका चले गए तो वहाँ एक बहुत बड़े नायक बन गए। लेकिन फिर भी वे बेहद अकेलापन महसूस करते थे क्योंकि वे राधा से नहीं मिल पाते थे। वे राधा से बहुत प्रेम करते थे। जब वृन्दावन में थे तो दोनों बराबर मिला करते थे। वे बांसुरी बजाते और नृत्य करते। पर द्वारिका पहुँचने के बाद वे एकदम अकेले पड़ गए, और अन्त तक अकेले ही रहे।

माता, पिता, पति, पत्नी या बच्चे अंतरंग साथी नहीं हो सकते। सच्चा साथ वही दे सकता है जो तुमसे प्रेम करे और जिसे तुम प्रेम करो। इसलिए कहता हूँ कि भगवान कृष्ण तो अकेले ही रहे। रुक्मिणी और सत्यभामा तो उनकी स्त्रियाँ थी, जो उनकी अंतरंग मित्र और सखी थी वह तो राधा थी। राधा कृष्ण से और कृष्ण राधा से अनन्य प्रेम करते थे। पर राधा तो छूट गई वहाँ और ये बस गए यहाँ। वह वहाँ अकेलापन महसूस करती और ये यहाँ।

**स्वामीजी, लोग कहते हैं कि ईसाई धर्म सिन याने पाप की अवधारणा पर आधारित है। वे कहते हैं कि जो बात भगवान को पसंद नहीं है, वही पाप है। तो उनको कैसे पता कि भगवान को कौन-सी चीज पसंद है और कौन-सी चीज नहीं?**

मुझे ऐसे प्रश्नों का जवाब नहीं देना चाहिए क्योंकि किसी भी धर्म पर लांछन लगाना या उसकी आलोचना करना साधु के लिए अच्छा नहीं है। हम साधु लोगों को चाहिए

कि हर एक धर्म को उसकी सीमाओं के साथ स्वीकार करें। यह हम सबका फर्ज होता है। ईसाई धर्म में पाप का जो सिद्धान्त है उस पर तो सौ आलोचनाएँ की जा सकती हैं, पर क्यों? जो मेरा धर्म नहीं है, उस धर्म की आलोचना करने का मुझे अधिकार नहीं है। मैं अपने धर्म की आलोचना कर सकता हूँ, अगर मुझमें हिम्मत है तो। मगर अपने धर्म की कोई आलोचना करता ही नहीं। हर एक को दूसरे की बहू ही कुलटा लगती है। अपनी बहू-बेटी तो किसी को कुलटा नहीं लगती।

हमारे धर्म में भी हजारों गलतियाँ हैं। छुआछूत क्या हमारे धर्म की कमजोरी नहीं है? विधवाओं के साथ जो परिपाटी बनी है क्या यह हमारे धर्म की कमजोरी नहीं है? कितनी कमजोरियाँ बतलाएँगे तुमको? न उनको हमारे धर्म की आलोचना करने का हक है, न हमें उनके धर्म की आलोचना करने का अधिकार है। क्यों? धर्म के दो रूप होते हैं—एक होता है सनातन, दूसरा होता है युग के मुताबिक। समाज को देखते हुए, राजनैतिक परिस्थितियों को देखते हुए, लोगों की आर्थिक स्थिति को देखते हुए, उनके शिक्षा के स्तर को देखते हुए जो धर्म प्रवर्तित होता है उसका स्वरूप अलग होता है। उस वक्त हम धर्म के ऊपर एक आवरण, एक जामा पहना देते हैं, और लोग उसी को पकड़ लेते हैं। अब किसी ने लम्बी दाढ़ी रखी तो मुसलमान हो गया, चुटिया रख दी तो हिन्दू हो गया, वाह भाई वाह! कोई मुसलमान सिनेमा में हिन्दू का रोल करता है तो जनेऊ तक पहन लेता है। जनेऊ-चुटिया रख ली, राम नारायण नाम रख दिया तो हिन्दू हो गया, और मुहम्मद रहमान नाम रख दिया तो मुसलमान हो गया! नाम से हिन्दू या मुसलमान कैसे हो सकता है आदमी? नाम तो संस्कृति की देन है, धर्म की नहीं। वस्त्र समाज की देन है, धर्म की नहीं।

अगर सचमुच देखो तो धर्म का संबंध केवल एक चीज से है। जीवात्मा का परमात्मा के साथ जो संबंध है, उसे ही धर्म का आधार मानते हैं। अंग्रेजी में धर्म को religion कहते हैं। Re माने दुबारा, ligion माने मिलना, याने religion का मतलब हुआ पुन: संबंध। संबंध किसका, और किसके साथ? परमात्मा तो एक था। उसके मन में भावना हुई, उसने संसार को पैदा किया, जीवात्मा को पैदा किया। अब जीवात्मा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद सोचती है, अरे मैं तो भटक गई हूँ अपने घर से, और फिर से वह वापस आती है, प्रतिप्रसव होता है। उसको कहते हैं religion। जीवात्मा-परमात्मा के मिलन के पथ का नाम religion है, धर्म है।

मगर हमारे यहाँ यही धर्म की अंतिम परिभाषा नहीं मानी जाती। यह धर्म की मूल परिभाषा जरूर है, पर अंतिम परिभाषा नहीं है। हमारे यहाँ धर्म की एक मूल परिभाषा है जिसे सनातन कहते हैं—जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का रास्ता—और एक है युगीन परिभाषा, जिसमें आचार से धर्म की परिभाषा होती है। आचार माने चाल-चलन। झूठ मत बोलो, यह मत करो, वह मत करो, अच्छे से रहो, स्त्री का धर्म यह है, पुरुष का धर्म यह है, पति का धर्म यह है, राजा का धर्म यह है,

प्रजा का धर्म यह है तो साधु का धर्म यह है। अब यहाँ पर दायित्वों और कर्तव्यों की बात आ गई। ये धर्म की बदलती परिभाषाएँ हैं। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन एक ऐसी परिभाषा है जो कभी नहीं बदलती, पर ये परिभाषाएँ युग-युग में बदलती हैं। लड़कियाँ पहले लंबे बाल रखती थीं, फिर काट करके छोटा हो गया, क्या इससे धर्म खत्म हो गया? नहीं, उस वक्त का धर्म बदल गया। पहले घूँघट रखती थीं, अब सिर पर कपड़ा नहीं रखतीं, क्या धर्म खत्म हो गया? नहीं, धर्म खत्म नहीं हुआ, बदल गया। जैसे मौसम के अनुसार कपड़े बदलते हैं, भूख के मुताबिक भोजन बनता है और जेब के मुताबिक खर्चा होता है, वैसे ही समय के साथ युगीन धर्म बदलता है। इसलिए हम किसी भी धर्म पर आक्षेप करने के पक्ष में नहीं हैं। वैसे पूछो तो ईसाई धर्म के बारे में हम अच्छी तरह से जानते हैं।

## हम तो पाप की परिभाषा जानना चाहते हैं?

पाप तो केवल एक ही चीज को कहते हैं। जिस वक्त जीवात्मा परमात्मा से बिछड़ गया वह पाप है, और जब मिल गया तो मोक्ष।

## तो पुण्य क्या है?

गरीब को थोड़े पैसे दे दो, भूखे को रोटी दे दो, प्यासे को पानी दे दो, ठण्ढ के मौसम में किसी को कम्बल दे दो, गरीब लड़की को साड़ी दे दो, बीमार को दवाई दे दो, होनहार लड़के को पढ़ाई के लिए वजीफा दे दो—यह पुण्य है। दूसरों के लिए जो अच्छा काम किया जाता है उसे पुण्य कहते हैं। तुलसीदास जी ने कहा है

और पुराणों में भी लिखा है कि इस कलियुग में दो ही चीजें काम करेंगी—भगवान का नाम जपो और पुण्य का काम करो। इसके अलावा कुछ नहीं काम करने वाला।

**आपने कहा कि परमात्मा एक है, वह हम मानते हैं। पर हिन्दू धर्म में इतने देवी-देवता हैं कि लोग किस तरफ ध्यान करें? कभी राम, कभी कृष्ण, कभी शिव, कभी काली तो कभी कोई और देवता ...**

आपने जो प्रश्न पूछा है यह मुझसे बहुत बार पूछा जा चुका है। इसे समझाना भी मुश्किल है और समझना भी। तुलसीदास जी ने कहा है कि निर्गुण मार्ग बहुत सरल है, जबकि सगुण मार्ग बहुत कठिन है। वह आसानी से समझ में नहीं आएगा। हमारे यहाँ वैदिक धर्म में अनेक देवी-देवताओं की उपासना की स्वीकृति मिली है। ऋग्वेद में लिखा है, *एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति*। सत् का मतलब जो है, जिसका अस्तित्व है। वह सत् एक है, लेकिन विद्वान् लोग, ज्ञानी लोग उसे अनेक ढंग से बोलते हैं। अनेक ढंग से बोलने का मतलब क्या हुआ? मान लो, आपके पास अंग्रेजी में लिखी ढेर सारी किताबें हैं। कोई योग पर है, तो कोई विज्ञान पर तो कोई भूगोल पर। अब योग की किताब को अंग्रेजी बोलें या विज्ञान की किताब को अंग्रेजी बोलें या भूगोल की किताब को अंग्रेजी बोलें? हैं तो सब अंग्रेजी, पर अंग्रेजी बोलने पर भी सब अलग-अलग हैं, एक नहीं हैं।

उसी तरह से एक चेतन आत्मा अनेक रूपों में प्रकट होती है। कठोपनिषद् में कहा है कि अग्नि जैसे एक है, मगर जब प्रकट होती है तो अनेक रूपों में प्रकट होती है, वैसे ही अन्तरात्मा एक है, मगर जब प्रकट होती है तो राम या कृष्ण या देवी के रूप में प्रकट होती है, लाखों-करोड़ों रूपों में प्रकट होती है। कुछ लोगों ने उनको राम के रूप में पाया, पहचाना, बहुत-से लोग तो देखकर भी पहचान नहीं पाते हैं। ईश्वर को पहचानना बहुत मुश्किल है। तुम्हारे घर में नया नौकर आता है, क्या तुम पहचान पाते हो कि कहीं चोर या डाकू तो नहीं है? चोर-डाकू को नहीं पहचान पाते हो, जो सामान्य विद्या है, तो ईश्वर को क्या पहचानोगे? तुम्हारे घर में कोई आता है, बोलता है भूखा हूँ, तुम सोचते हो क्या सच में भूखा है या नहीं? जब इतना तक नहीं पहचान पाते हो तो भगवान को क्या पहचान पाओगे? समझ में आ रही है न बात, ईश्वर को जानना इतना सरल नहीं है।

दूसरी बात, भगवान ने राम या कृष्ण के रूप में अवतार लिया, और बहुत-से ऐसे भी रूपों में अवतार लिया जिनको आज हम भूल भी चुके हैं। राम और कृष्ण सम्प्रदायों के कारण जीवित हैं, अनेकों सम्प्रदाय तो खत्म भी हो गये हैं। भगवान ने जब कोई विशेष स्वरूप धारण किया तो केवल तुम्हीं सरीखों के लिये किया जो भगवान को जानना चाहते हैं, जो भगवान में मन लगाना चाहते हैं, जो भगवान में अपनी आत्मा को डुबाना चाहते हैं, जो भगवान में अपने अस्तित्व को समाप्त कर

लेना चाहते हैं। मगर करें कैसे? निर्गुण का तो कुछ अता-पता ही नहीं है, उसका कोई रूप नहीं है, गुण नहीं है। मगर सगुण का रूप है, वह सुन्दर है, सलोना है, आँखें उसकी लाल हैं, उसके शरीर का रंग काला है, उसके कंधे बहुत चौड़े हैं, उसके हाथ घुटनों तक पहुँचते हैं, बोलने में बड़े अच्छे हैं, जब किसी की तरफ देखते हैं तो लगता है हजारों-हजार फूल गिर गये। किसी मनोहर पुरुष, स्त्री या बच्चे को देखते हो या किसी सुन्दर फूल, साड़ी या आभूषण को देखते हो तो अच्छा नहीं लगता है क्या? मन उसमें डूबता है न? अब ये सब निर्गुण हो जायेंगे तो क्या होगा?

ईश्वर का सबसे पहले साकार रूप यह सारी सृष्टि है। किन्तु यह इतना बड़ा साकार रूप है कि उसका तुम ध्यान नहीं कर सकते हो। इसलिये भगवान ने मनुष्य को उसके मन के अनुरूप ध्यान का आधार दिया। और वह आधार था अवतार। वैसे तो कहते हैं कि दुष्टों का संहार करने के लिये, साधु लोगों का उद्धार करने के लिये और धर्म की स्थापना के लिये भगवान का अवतार हुआ, मगर मैं मानता हूँ कि भक्तों को सहारा देने के लिये भगवान का अवतार हुआ। रामचरितमानस में प्रसंग आता है कि जब भगवान शंकर और पार्वती जी का विवाह हो गया तो एक दिन पार्वती जी ने उनसे पूछा, 'भगवन्! पूर्वजन्म में तो मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, मैं श्रीराम को नहीं पहचान पाई। मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि औरत के विरह में रोने वाला यह व्यक्ति भगवान कैसे हो सकता है। भगवान तो निराकार-निर्गुण हैं, सुख-दुःख के परे हैं, जन्म-मृत्यु के परे हैं, हमने तो यही सुना था, मगर यह रोने वाला भगवान कहाँ से आ गया? उस समय मेरे मन में संदेह हुआ और मैंने परीक्षा भी ली, मगर अब मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। अब केवल उनकी कथा सुनना चाहती हूँ।'

तब शिवजी ने गिरिजा से कहा, 'पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, सकल लोक जग पावनि गंगा।' भगवान राम की जो कथा है उसके जो अलग-अलग प्रसंग हैं वे सारे संसार को पावन करने वाले हैं। कथा का आधार भगवान की लीला होती है। अगर रामजी पैदा ही नहीं होते तो उनकी कथा कहाँ से मिलती? अब उनकी कथा सुन-सुन कर लोग पवित्र हो रहे हैं। इसलिए भगवान शिव कहते हैं, 'हे गिरिजा! तुम श्रीराम की कथा का प्रसंग पूछ रही हो, वह सारे संसार को पवित्र करने वाली गंगा के समान है। चलो मैं तुम्हें सुनाता हूँ।' कितनी सुन्दर है साकार की उपासना! हजारों वर्षों तक कथा कर सकते हो। अगर भगवान के चरणों में मन न लगे तो उनकी नाभि का ध्यान करो या विशाल कंधों का ध्यान करो। वहाँ मन नहीं लगता है तो उनके ललाट का ध्यान करो। भगवान के किसी-न-किसी रूप में तुम्हारा मन लग ही जायेगा। भगवान को भगवान न मानो, अपना यार मान लो, क्या फर्क पड़ता है जी? आखिर भगवान को याद ही तो करना है न? यार मान कर याद करो, प्यार से याद करो, नहीं तो डंडा मार कर भी याद कर सकते हो। बैद्यनाथ आदिवासी था, वह मारता था डंडा उनको। देवघर का यह वैद्यनाथ जी का मंदिर आदिवासियों का बहुत पुराना मंदिर है।

अंतिम बात, भगवान के बारे में चर्चा करनी चाहिये, पर शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि तुम जो शंका कर रहे हो उस शंका का कोई समाधान है ही नहीं। अब तुम ही बताओ, तुम्हारा बाप वाकई तुम्हारा बाप है, इसका प्रमाण दे सकते हो क्या? जब बाप के होने का प्रमाण नहीं दे सकते हैं, एक छोटी-सी बात का हम प्रमाण नही दे सकते हैं तो भगवान का प्रमाण हम क्या दे पाएँगे? नहीं, वे बुद्धि के परे हैं। बहुत-सी चीजें श्रद्धा और विश्वास पर आधारित होती हैं। जिन्होंने रामचरितमानस पढ़ी है उन्होंने ध्यान दिया होगा कि भगवान की भक्ति का आधार श्रद्धा और विश्वास है। श्रद्धा-विश्वास ही भगवान की साधना का पहला क-ख-ग है।

*भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।*
*याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥*

अपने अन्दर जो भगवान है, वह श्रद्धा-विश्वास के बिना नहीं दिखता। जिस भगवान को, जो तुम्हारी जेब में है, जब तुम श्रद्धा-विश्वास के बिना देख नहीं सकते हो, सिद्ध लोग भी नहीं देख सकते हैं, तब ऊपर वाले को कैसे देखोगे? वह तो बहुत दूर है। इसलिये शुरू में ही तुलसीदास जी ने कह दिया– *वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्*। वहाँ पर गुरु की आवश्यकता है। गुरु वह है जो भक्त और भगवान के बीच बिचौलिया का काम करता है।

*–19 नवम्बर 1997, रिखियापीठ*

# योग का लक्ष्य

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाओं की आधारशिला पर सन् 1963 में श्री स्वामीजी ने मुंगेर में योगाश्रम का निर्माण किया। उस समय उन्होंने कहा था कि जब तक भारत के लोग योग को अपनाकर जीवन जीया करते थे, हमारे समाज में खुशहाली, समृद्धि और शान्ति थी। जब से भारत के लोगों ने योगाभ्यास करना छोड़ा है, तब से अशान्ति फैली है, दु:ख-दरिद्रता आई है। योग के ज्ञान का प्रचार करना और राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में अपना सहयोग देना, इसी भावना से प्रेरित होकर श्री स्वामीजी ने योगाश्रम की स्थापना की थी।

उस समय लोग उनसे पूछा करते थे कि आप जो आसन, प्राणायाम और ध्यान सिखाते हैं, इससे क्या मिलेगा? उन्होंने कहा था कि मनुष्य-मन की पात्रता बढ़ेगी और वह शुद्ध होगा। मुझे याद है, जब यहाँ धर्मशाला में सन् 1965 में अन्तरराष्ट्रीय योग सम्मेलन हुआ था, तब पुरी के शंकराचार्य आए थे और उन्होंने श्री स्वामीजी से एक प्रश्न किया था, 'तुम योगाभ्यास सिखाते हो और अपने चेलों को कर्मयोग की शिक्षा देते हो। क्या तुम्हारे विचार से योगाभ्यास और कर्मयोग से मोक्ष संभव हो पाएगा?'

श्री स्वामीजी ने शंकराचार्य को उत्तर दिया था, 'भगवन्, आप हमारी परम्परा के आचार्य हैं, हमसे श्रेष्ठ हैं, किन्तु मेरा मत और विश्वास है कि जब मनुष्य के जीवन में योगाभ्यास द्वारा शान्ति आएगी, तब वह शान्ति ही उस मनुष्य को ईश्वराभिमुख बनाएगी।' जब तक मन अशान्त रहता है, तब तक मनुष्य ईश्वर की ओर नहीं देखता, बल्कि अपनी अशान्ति को दूर करने का प्रयास करता है। भले ही वह ईश्वर को अपना सहारा बना ले, लेकिन ईश्वर-चिंतन नहीं हो पाता है। ईश्वर से दु:ख-निवृत्ति की प्रार्थना होती है, लेकिन ईश्वर का चिंतन या भक्ति नहीं हो पाती है। एक बार जब मन शान्त हो जाएगा, तब मन स्वत: उस भक्ति में रम जाएगा, ओत-प्रोत हो जाएगा।

जहाँ तक कर्मयोग का प्रश्न उठता है, कर्मयोग वास्तव में सेवा है। जब मनुष्य कर्म को कर्मयोग की भावना से करता है, तब उसे अपने मन से डरना नहीं होता। नहीं तो मनुष्य सफलता और असफलता के बारे में सोचकर भयभीत हो जाता है। जब बिना किसी अपेक्षा के, केवल एक कर्त्तव्य के रूप में, निष्ठा, प्रेम और सम्मान के साथ कर्म किया जाए, तब उस समय अपने मन को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं। मन भागता है, भागने दो, केवल परोपकार का भाव रखो। जब तक तुम्हारे मन में यह भाव है, तुम्हारा मन एक अच्छे कार्य की पूर्णता की ओर अग्रसर होगा। उसमें उसे सुख मिलेगा, शांति मिलेगी, तृप्ति होगी।

इसीलिए गुरुजी कहते थे कि जब आदमी सेवा करता है, तब उसे बहुत अच्छा लगता है। उसका मन हल्का हो जाता है कि मैंने सेवा की। अगर आप किसी की सेवा सच्चे दिल से करोगे, तो आपको बहुत अच्छा लगेगा, बहुत प्रसन्नता होगी। खुशी होगी कि मैंने सेवा की है, मैं अपनी स्वार्थ वृत्ति से कुछ क्षणों के लिए बाहर आकर दूसरे के जीवन में सुख ला पाया हूँ। सेवा की प्रसन्नता मन की सभी वृत्तियों को शान्त करने में सक्षम है। कर्मयोग का यही प्रयोजन है।

इस प्रकार जो उत्तर श्री स्वामीजी ने पुरी के शंकराचार्य को दिया था और जिस उत्तर में उनके विचारों का निचोड़ दिखलाई दे रहा है, उसी कार्य को योगाश्रम ने आगे बढ़ाया है। पिछले पचास वर्षों में योग का जो व्यापक प्रचार हुआ है, उसका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। दुनियाभर के लोग यहाँ से योग सीखकर जाते हैं। भले ही योगाश्रम का प्रत्यक्ष कार्य योग का है, लेकिन अप्रत्यक्ष कार्य अपनी संस्कृति का प्रचार करना और लोगों के जीवन में संस्कारों को देना रहा है। यही इसका असली कार्य रहा है। योग तो केवल माध्यम बना है।

योग का उद्देश्य मोक्ष नहीं है, बल्कि जीवन में प्रवीणता को हासिल करके सफलता को प्राप्त करना है। यह योग का उद्देश्य है। गीता में योग की एक व्याख्या है– *'योग: कर्मसु कौशलम्'*, जिससे स्पष्ट होता है कि योग एक साधना ही नहीं, बल्कि जागृति की एक अवस्था भी है। भौतिक स्तर पर योग कर्मों में कुशलता है, रचनात्मकता कर्मों की सकारात्मक अभिव्यक्ति है। *'योग: कर्मसु कौशलम्'* योग की बाह्य अभिव्यक्ति है, जिससे हम अपने जीवन, परिवार, समाज और राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं, उनका उत्थान कर सकते हैं। चाहे वह स्वास्थ्य हो, शान्ति हो, तनाव-मुक्ति हो या और कुछ भी हो, वह कर्मों की कुशलता से सम्भव होता है। यह एक बिन्दु है।

दूसरा बिन्दु है, *'समत्वं योग उच्यते।'* मन की विचलित अवस्थाओं को संतुलित करके जीवन में समभाव को धारण करो। समभाव किसमें आना है? असली समभाव तो द्वैत में आना है, क्योंकि जब तुम अपने मन की द्वैत अवस्था को संभाल लोगे, तब फिर जीवन का सुख और दु:ख तुम्हें विचलित नहीं करेगा। इसलिए द्वैत

अवस्था में समत्व की प्राप्ति करनी है। समत्व से मन शान्त होता है, स्थिर होता है, एकाग्र होता है और शुद्धि को प्राप्त करता है।

तीसरा बिन्दु ब्राह्मी वृत्ति की जागृति है। मन कभी खाली नहीं रहता। मन में हमेशा कुछ-न-कुछ चिंतन, विचार और भाव उमड़ते रहते हैं, जो हमें संसार से, विषयों से, तनाव, चिंता, परेशानी, अपेक्षा, कामना और वासना से जोड़ते हैं। लेकिन अगर मन में शान्त वृत्ति का उदय हो तो उसे ब्राह्मी वृत्ति कहा जाता है, क्योंकि शान्त अवस्था में ही मन का विकास होता है।

'ब्रह्म' शब्द का अर्थ विकसित चेतना है। ब्रह्म शब्द को भले ही हम लोग ईश्वर से जोड़कर कहते हैं कि यह ईश्वर का संबोधक है, परमात्मा का परिचायक है, लेकिन संस्कृत में ब्रह्म शब्द 'बृंह्' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य उस चेतना से है जिसका निरन्तर विकास हो रहा है। ब्रह्म या परमात्मा वह है, जो कभी एक अवस्था में नहीं रहते, बल्कि जिनका विकास हमेशा होते रहता है, जिनकी व्यापकता हमेशा बढ़ती रहती है। जब हम अपने आप को इस ब्राह्मी वृत्ति के संदर्भ में देखते हैं, जोड़ते हैं, तब इसका मतलब होता है, मन को तमोगुण के बंधनों से मुक्त करके सत्त्व में स्थापित करना। तमोगुण की वृत्ति सांसारिक वृत्ति है और सत्त्वगुण की वृत्ति ब्राह्मी वृत्ति। इसका संकेत श्रीकृष्ण ने गीता में भी दिया है।

गीता में कृष्ण जी अर्जुन को बार-बार कहते हैं कि अपने आपको मुझे समर्पित कर दो। अर्जुन पूछता है, 'भगवन्, आप बार-बार कहते हैं कि समर्पित कर दो। मैं क्या चीज अर्पित करूँ?' भगवान कहते हैं, '*मय्येव मन आधत्स्व,* अपना मन मुझमें समर्पित कर दो।' अर्जुन कहता है, 'बहुत कठिन है। अपने मन को आज तक मैं स्थिर नहीं कर पाया हूँ। मन हमेशा दुर्योधन के बारे में सोचता रहा है, दु:शासन के बारे में सोचता रहा है, अपने दु:खों के बारे में सोचता रहा है। और अब युद्ध-भूमि में खड़ा हूँ, तो मन उसी चीज को याद कर रहा है। मैं अपने मन को स्थिर कर पाऊँ, संभव नहीं है। कोई दूसरा उपाय?'

भगवान कहते हैं, *'मयि बुद्धिं निवेशय*। अगर मन को स्थिर नहीं कर पाते, तो कम-से-कम अपनी बुद्धि से तो सोच सकते हो कि मैं सब चीजें ईश्वर को अर्पित कर रहा हूँ। बुद्धि को ही अर्पित कर दो। बुद्धि से ही सोच लो। अगर पूरी भावना से अर्पण नहीं कर सकते हो तो बुद्धि से अर्पण का ढोंग तो कर सकते हो। तुम्हें ख्याल तो हो जाएगा कि 'मैं हूँ'। एक बार 'मैं हूँ' का ख्याल हो जाएगा, तो बार-बार तुम्हारी बुद्धि मेरी ओर आकृष्ट होगी।'

अर्जुन कहता है, 'भगवन्, अगर मेरी बुद्धि ठीक रहती तो मैं आपसे यह प्रश्न क्यों करता? आप कहते हो कि बुद्धि को मुझमें लगा दो। लेकिन मेरी बुद्धि तो गड़बड़ाई हुई है। अगर बुद्धि ठीक रहती तो मैं विषाद में नहीं जाता, अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलता। इस गड़बड़ाई बुद्धि को मैं कैसे लगा सकता हूँ? कोई और तरीका बताइए।'

तब भगवान कहते हैं, *'मामेकं शरणं व्रज*। ठीक है, मन नहीं लगाओ, बुद्धि नहीं लगाओ, तुम केवल मेरे साथ रहो।' मेरे साथ रहने का क्या मतलब है? विश्वास। ऐसा दृढ़ विश्वास जिससे हम भगवान के साथ हमेशा रह सकें, बिना मन को लगाए, बिना बुद्धि को लगाए।

भगवान ने जो तीसरी बात कही है, वह यही है कि तुम अगर मुझे हृदय से बुलाओगे, तो मैं हमेशा वहाँ पर तुम्हारे साथ उपस्थित रहूँगा। इसलिए जब भगवान को बुलाना हो, तो अपने मन से नहीं, अपनी बुद्धि से नहीं, हृदय से बुलाना। अगर मन लगा सकते हो तो बहुत अच्छा है, पर मन केवल योगी ही लगा पाता है। योगी बन जाओगे तो मन लग जाएगा। अगर बुद्धि लगा सकते हो तो भी बहुत अच्छा है, पर बुद्धि केवल गृहस्थ ही लगाता है। बुद्धि का उपयोग लेन-देन के लिए होता है। गृहस्थ भगवान से कहता है कि आप मेरा यह काम कर दो तो मैं आपको अच्छा भोजन, मिठाई, पकवान खिला दूँगा। लेकिन भक्त का न मन होता है, न बुद्धि। उसमें तो केवल हृदय का भाव होता है। जो हृदय से ईश्वर को पुकारता है, ईश्वर की आराधना करता है, ईश्वर हमेशा उसके साथ रहते हैं और केवल वही उस ईश्वर को देख सकता है, दूसरा कोई नहीं।

भगवान ने ये तीन तरीके बतलाये हैं– *मय्येव मन आधत्स्व,* मन मुझमें लगा दो। यदि यह नहीं हो सकता, तो *मयि बुद्धिं निवेशय,* बुद्धि मुझमें अर्पित कर दो। अगर वह भी नहीं हो सकता तो दिल का दरवाजा खोलकर मुझे बुला लो। अब दिल का दरवाजा कैसे खोलें, वह पूछने की हिम्मत अर्जुन की नहीं होती। लेकिन उसका समाधान भगवान अपनी शिक्षाओं में हमेशा कर देते हैं। वे कहते हैं कि एक ही काम करो। यह जान लो कि तुम जिस संसार में रहते हो, वह माया है, और यह जान लो कि तुम्हारे भीतर जो आत्मा है, वह मेरी छाया है। मेरी छाया को अपने भीतर देखो। संसार में, माया में बेशक रहो, लेकिन अपने भीतर देखो। जो इतना कर लेता है, वह अपने जीवन में ईश्वर को प्राप्त करता है, धर्म के सभी उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करता है। उसी के जीवन में अध्यात्म जाग्रत होता है और वही सच्चा मनुष्य कहलाता है। यही हम लोगों के भारतीय चिंतन के अनुसार सच्चा अध्यात्म है।

*–'अध्यात्म के अध्याय' से उद्धृत*

# प्रारब्ध बनाम पुरुषार्थ

स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती

अर्जुन के जीवन-रथ की बागडोर स्वयं उनके गुरु श्रीकृष्ण ने सम्भाल ली थी। क्यों? इसलिए कि अर्जुन ने अपने कायरता रूपी दोष तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य अज्ञान को समझ लिया था। उसे इस दल-दल या मकड़जाल से बाहर आने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। अत: उसने अपने गुरु से निवेदन किया, 'मैं, आपका शिष्य, आपकी शरण में हूँ। आप मुझे वह मार्ग बताएँ जो मेरे लिए श्रेयस्कर है।' यहाँ शरणागति की बात हो रही है। शरणागति समर्पण की अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था में स्थित शिष्य या भक्त की गुरु या भगवान पूरी सहायता करते हैं, उसे सद्प्रेरणा प्रदान करते और उसके भौतिक तथा आध्यात्मिक मार्ग दोनों को आलोकित करते हैं।

एक बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, चलना तो शिष्य को ही पड़ता है। उसे चलना पड़ेगा ही। यह बात स्वामी शिवानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी बार-बार कह चुके हैं और कहते भी रहते हैं। शास्त्रों ने भी विभिन्न प्रसंगों तथा प्रकारों से 'चरैवेति-चरैवेति' का उद्घोष किया है।

गुरु लक्ष्य बताते हैं, मार्ग बताते हें, साधन बताते हैं और मार्ग को प्रकाशित भी करते हैं, लेकिन दूरी हमें ही तय करनी होगी। गुरुजन अनेक बार कह चुके हैं कि हजार मीलों की यात्रा प्रथम कदम से प्रारम्भ होती है, लेकिन हम हैं कि यह प्रथम कदम उठाते ही नहीं। कभी तो हम प्रारब्ध की बात कहकर आगे नहीं बढ़ते, कहते हैं कि जो भाग्य में होगा वही होगा, ज्यादा माथा-पच्ची करने से क्या फायदा। अथवा कभी कहते हैं कि बिना कृपा या अनुग्रह के हम टस-से-मस नहीं हो सकते। जब कृपा होगी तो सब अपने आप ठीक हो जायेगा। सैद्धान्तिक, व्यावहारिक एवं कार्यात्मक दृष्टिकोणों से ये दोनों ही तथ्य निराधार और निरर्थक हैं।

सर्वप्रथम कृपा अथवा अनुग्रह पर विचार करें। हम गुरु-कृपा या देवी-देवता की कृपा की बात करते हैं, उनसे अनुग्रह की अपेक्षा रखते हैं। यह बिल्कुल ठीक है। कृपा या अनुग्रह की यथार्थता निस्सन्देह है, लेकिन वह प्राप्त कैसे हो? कोई सीधा, स्पष्ट फॉर्मूला नहीं मालूम पड़ता है। कृपा-पात्र होने के लिये कोई योग्यता निर्धारित है क्या? उत्तर हाँ या नहीं, दोनों में हो सकता है।

गीता के बारहवें अध्याय के अन्तिम आठ श्लोकों में प्रभु ने अर्जुन को बताया है कि उनका कृपा-पात्र कौन हो सकता है। इन सभी श्लोकों का सार है कि व्यक्ति को शुद्ध, सन्तुष्ट, शान्त, सन्तुलित और समभावी होना चाहिये। इसी प्रकार पाँचवें एवं छठे अध्यायों एवं अन्यत्र भी अनेक प्रसंगों में प्रभु ने समभाव एवं आत्मभाव

की चर्चा की है। यदि आप ध्यान से विचार करेंगे तो पाएँगे कि समभाव और आत्मभाव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें अपने अन्दर समभाव-आत्मभाव विकसित करने का प्रयास करना चाहिये। पुन: गीता में अनेक स्थानों पर 'मत्कर्मकृत्', 'सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य' एवं 'ब्रह्मणि आधाय कर्माणि' जैसे पदों का प्रयोग हुआ है। तात्पर्य यह है कि हमें ईश्वर के लिये अथवा ईश्वरार्पण के भाव से कर्म करना चाहिये। रामचरितमानस में श्रीराम ने हनुमान जी एवं काकभुसुंडी जी से स्पष्टत: कहा है कि मेरा सेवक मेरा प्रियतम है। हनुमान जी से उन्होंने यहाँ तक कहा है कि जो चराचर को मेरा ही स्वरूप मानकर उसकी सेवा करता है वह मेरा अनन्य भक्त है। यह समभाव और सेवाभाव का अत्यन्त सुन्दर समन्वय है।

इस प्रकार हमें फॉर्मूला मिल गया—समभाव-आत्मभाव सह सेवाभाव से अनुग्रह की प्राप्ति होती है। यह एक सुन्दर, सरल, व्यावहारिक फॉर्मूला है। हमें 'मैं-मेरा-मेरी', 'तुम-तेरा-तेरी', 'वह-उसका-उसकी' की अवधारणा से बाहर आना ही होगा। हम समभाव-आत्मभाव एवं सेवाभाव से अयुक्त रहते हुए अनुग्रह के आलोक अथवा कृपा के आह्लाद को प्राप्त नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह बात समझाने की पूरी कोशिश की है—

*आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।*
*सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत:॥6.32॥*

'हे अर्जुन, जो दूसरों के सुख-दु:ख को अपना सुख-दु:ख समझता है, मेरी दृष्टि में वह सर्वोत्तम योगी है।' हम सहज ही समझ सकते हैं कि अन्त:करण की सम्पूर्ण शुद्धिकरण के बाद ही समभाव-आत्मभाव और सेवाभाव की यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है। इस शुद्धिकरण की प्राप्ति हेतु योगांगों की सतत्, दीर्घकालीन एवं अति श्रमसाध्य-तपोसाध्य प्रक्रिया से गुजरना ही होगा।

अब प्रारब्ध पर वापस आते हैं। भाग्य, नियति या प्रारब्ध प्राय: पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इनका जो वास्तविक तात्पर्य है उसे जानने-समझने का हम प्रयास नहीं करते। सामान्य मान्यता यह है कि कोई ऐसी अज्ञात शक्ति या सत्ता है जो हमारी दशा-दिशा का निर्धारण अपनी मनमर्जी से, अकारण ही करती रहती है। हम कठपुतलियों की तरह उसकी ऊँगलियों के वश में हैं और चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते। इस सत्ता या शक्ति को ही लोग भाग्य, नियति या प्रारब्ध का निर्धारक मानते हैं। हम सोचते हैं कि हम जो कुछ भी हैं, जैसे भी हैं, इसी प्रारब्ध के परिणाम हैं। यह मान लेते हैं कि चलो, सब-कुछ ऐसे ही चलनेवाला है, जो भाग्य में लिखा है वही होगा, हम उसकी गिरफ्त से नहीं छूट सकते।

कुछ समय के लिये प्रारब्ध के इस सिद्धान्त को सही मान लीजिये। तो इस सम्बन्ध में हम क्या कर सकते हैं? उसके बारे में तो हमें कुछ पता ही नहीं है। वह हमारा भूत है, वर्तमान है, या भविष्य? इन प्रश्नों का उत्तर तो किसी के पास है नहीं, हम बिल्कुल अनजान हैं। इस प्रकार प्रारब्धवाद या भाग्यवाद एक निरुपायवादी दर्शन बन जाता है। यदि संसार में इस भाग्यवाद को मान्यता मिल जाए तो मानव प्रमाद, आलस्य तथा अकर्मण्यता का शिकार हो जायेगा एवं सृष्टिक्रम अस्त-व्यस्त, पूरी तरह अव्यवस्थित और अन्ततः भंग हो जायेगा।

वास्तव में प्रारब्ध सम्बन्धी उपरोक्त धारणा बिल्कुल निराधार है। समस्त सृष्टि प्रकृति के नियमों से प्रबद्ध है, सब-कुछ कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुसार घटित होता है। सृष्टि में जो कुछ भी हो रहा है उसकी एक निश्चित पद्धति, प्रक्रिया, विधि-विधान, नियम-उपनियम-विनियम हैं और तदनुसार परिणाम भी होते हैं। सांख्य दर्शन स्पष्टतः घोषित करता है कि परम पुरुष के निर्देश में परा प्रकृति स्वयं को क्रमशः महत् तत्त्व, अहंकार, तीन गुणों, तन्मात्राओं और पंचभूतों तथा ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के रूप में अभिव्यक्त करती है। सृष्टि में सूर्य-चाँद-तारे, ग्रह-नक्षत्र, पर्वत-सागर-सरिता, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, देव-दानव-मानव तथा अन्य सभी चराचर पदार्थ पंचभूतों एवं त्रिगुणों के संयोजन तथा क्रमपरिवर्तन के परिणाम हैं। व्यक्त एवं अव्यक्त सृष्टि में जो कुछ भी है उसके सृजन-संचालन-प्रलय का कारण यह संयोजन एवं क्रमपरिवर्तन ही है।

अतः जो कुछ भी हुआ, हो रहा है अथवा होनेवाला है, वह हमारे अज्ञान के कारण अज्ञात भले ही हो, अकारण नहीं है। इसी प्रकार प्रारब्ध भी सकारण है, और शास्त्रों की सम्मति में हमारे पूर्व के कर्मों का परिपक्व परिणाम है, जिसके भोग से हमें गुजरना ही है। स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि यह बन्दूक से निकली हुई गोली के समान है जो किसी-न-किसी लक्ष्य का भेदन-छेदन करेगी ही। अतः उन्होंने बार-बार वर्तमान के पुरुषार्थ पर बल दिया है ताकि हमारा भावी प्रारब्ध उत्तम बने। स्वामी शिवानन्द जी तो प्रारब्ध का रोना रोनेवालों को धिक्कारते हैं, कायर कहते हैं। उनके सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के विचार से कर्म, कर्म से आदत, आदत से चरित्र और चरित्र से प्रारब्ध का निर्माण होता है। तदनुसार जिसे हम भाग्य, नियति या प्रारब्ध कहते

हैं वह हमारे पूर्व के कर्म, स्वप्रयास अथवा पुरुषार्थ का परिणाम है। अत: किसी अज्ञात सत्ता द्वारा निर्धारित नियति जैसी कोई चीज है ही नहीं। उन्होंने इसे एक भ्रम या मोह बताया है तथा बार-बार हमसे कहा है कि इस मोह-निद्रा से जागो, उठो, चलो, दौड़ो अपने लक्ष्य की ओर।

हमें यह भी जानना चाहिये कि भाग्य, नियति या प्रारब्ध किसी भी धर्म, दर्शन अथवा शास्त्र का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय नहीं रहा है। प्रसंगवश, किसी विषय-वस्तु या व्यक्ति के सन्दर्भ में यत्र-तत्र तत्सम्बन्धी संकेतमात्र मिलते हैं। सम्पूर्ण गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित किया, ललकारा है। अर्जुन तो स्वजनों के मोह तथा जीत-हार की अनिश्चितता के भय से ग्रस्त था। मोह और भय दोनों! क्या कोई अन्य स्थिति इससे अधिक दयनीय हो सकती है? और इसी स्थिति में वह गुरु की शरण में आता है, मार्ग दर्शन की अपेक्षा से। गुरु साफ-साफ कहते हैं, 'हे पार्थ! मोह-निद्रा से उठो, निर्भय होकर युद्ध करो। यही तुम्हारा कर्म है और यही तुम्हारा स्वधर्म भी।' सम्पूर्ण गीता में स्वकर्म, सहज कर्म, स्वधर्म और स्वभावज कर्म जैसे पदों का प्रयोग समान अर्थ में हुआ है और इन सब का तात्पर्य पुरुषार्थ से ही है।

समस्त शास्त्रों द्वारा स्वकर्म, अभ्यास और साधना पर बल दिया गया है। यह कहा गया है कि हम जो हैं, जैसे हैं, अपने कर्मों या पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप हैं। श्रीरामचरितमानस में कहा गया है– *काहु न कोउ सुखदु:ख कर दाता, निजकृत कर्म भोग सब ताता।* यह भी कहा गया है कि *कर्म प्रधान विश्वकरि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।* अन्यत्र कहा गया है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत्कर्म शुभाशुभम्।' गीता स्पष्ट रूप से घोषणा करती है कि 'ईश्वर मनुष्यों के न तो कर्तापन की, न कर्मों की और न कर्मफल के संयोग की ही रचना करते हैं। साथ ही, वे न किसी के पाप कर्म को और न किसी के पुण्य कर्म को ग्रहण करते हैं। ये सब-कुछ प्रकृति की अन्त:क्रियाओं के क्षेत्र में घटित हो रहे हैं।' अपने चारों तरफ की घटनाओं से भी ऐसा ही प्रतीत होता है। यदि हम बबूल के पेड़ लगाएँगे तो काँटे ही मिलेंगे और आम के पेड़ से रसीले, स्वादिष्ट आम। यदि ऐसा है तो फिर हमारे जीवन में किसी अज्ञात सत्ता या शक्ति को मनमर्जी करने का अवसर कहाँ मिलता है?

आध्यात्मिक जगत् के सभी सन्त-महात्माओं एवं गुरुओं ने साधना के महत्त्व को अत्यधिक उजागर किया है। साधना का अर्थ ही होता है स्वयं की समग्र समुन्नति हेतु किया गया सतत् प्रयास। यही सतत् प्रयास हमारा पुरुषार्थ है और इसे ही शास्त्रों एवं सन्तों ने अभ्यास नाम से सम्बोधित किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का तात्पर्य होता है चित्त की वृत्तियों का निरोध, तथा यह निरोध अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा सिद्ध किया जा सकता है– *'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध:।'* वे कहते हैं कि लम्बे

समय तक निरन्तर योगाभ्यासरत श्रद्धावान् साधक ही योगमार्ग में सुदृढ़ अवस्था प्राप्त कर सकता है। अन्तत: वह क्रमश: अन्त:शुद्धि, ज्ञानदीप्ति और आत्मज्ञान प्राप्त करता है। जिस अवधारणा को महर्षि पतंजलि मनोनिरोध कहते हैं, श्रीकृष्ण उसे ही मनोनिग्रह कहते हैं। गीता के छठे अध्याय में अर्जुन जब अपने गुरु से चंचल मन के निग्रह का उपाय पूछता है तब श्रीकृष्ण भी उसे अभ्यास और वैराग्य की साधना का ही निर्देश देते हैं– *'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'*

कबीरदास जी ने अपनी सहज-सरल-सधुक्कड़ी भाषा में कहा–'करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान।' अर्थात, सतत् अभ्यास से एक निरा अज्ञानी व्यक्ति भी आत्मज्ञानी बन सकता है। एक अन्य सन्त की वाणी है–

*हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरि नाम।*
*जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिये॥*

यहाँ प्रभु के सतत् स्मरण एवं शरणागति की बात कही जा रही है, किन्तु प्रारम्भ में ही 'हारिये न हिम्मत' कहकर पुरुषार्थ पर बल दिया जा रहा है। श्रीकृष्ण भी अर्जुन को गीता के आठवें अध्याय के प्रारम्भ में ही कहते हैं, 'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।' युद्ध तो अर्जुन का पुरुषार्थ है, अत: यहाँ निरन्तर इष्ट-स्मरण के साथ-साथ पुरुषार्थ की अनिवार्यता को भी 'युध्य च' कहकर रेखांकित किया जा रहा है। गीता में यह भी कहा गया है कि एक साधक को किसी तत्त्वज्ञानी महात्मा की सेवा करनी चाहिये तथा उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते हुए उनके सामने अपनी जिज्ञासा व्यक्त करनी चाहिये। तब वे महात्मा उसे ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर देते हैं और वह मोहमुक्त हो जाता है। यहाँ जिज्ञासा एवं श्रद्धा के साथ सेवा, अर्थात् पुरुषार्थ के महत्त्व को भी उजागर किया जा रहा है।

घोर, निरंतर पुरुषार्थ ने ही स्वामी शिवानन्द जी को एक चिकित्सक से महामानव और अन्तत: दिव्य मानव बनाया। उनके पट्ट शिष्य, स्वामी सत्यानन्द जी के बारे में भी यही बात लागू होती है। उनके बारे में स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था, 'सत्यम् नचिकेता के वैराग्य से युक्त हैं तथा अकेले चार व्यक्तियों का काम करते हैं।' इन्हीं दिव्य गुणों के कारण वे दिग्विजयी गुरु तथा आध्यात्मिकता

के उच्चतम शिखर तक पहुँचने में सफल हुए। स्वामी निरंजनानन्द जी की कहानी भी अद्भुत और अनोखी है। उनके पूर्व जन्मों की साधनाजन्य दिव्यता के कारण ही श्री स्वामीजी ने उन्हें इस जन्म के पूर्व ही अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी बनाया। विगत पचास वर्षों के अपने अथक पुरुषार्थ द्वारा उन्होंने सत्यानन्द योग को अधिकाधिक विश्वव्यापी, सशक्त एवं लोकप्रिय बनाया, उसे सही अर्थों में एक आन्दोलन का रूप दिया, तथा एक सतत् प्रवाहमान पद्धति के रूप में संसार के कोने-कोने में पहुँचा दिया। उन्होंने इन कथनों को अक्षरश: सिद्ध कर दिखाया कि 'कठिन श्रम का कोई विकल्प नहीं होता' तथा 'ईश्वर उसी की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करता है।'

एक बार सत्संग के समय किसी शिष्य ने श्रीस्वामीजी से पूछा कि महाभारत युद्ध में अर्जुन की विजय प्रारब्ध का परिणाम था अथवा पुरुषार्थ का। श्री स्वामीजी तो अन्तर्यामी थे, वे समझ गये कि मेरा यह शिष्य पुरुषार्थी नहीं, प्रारब्धवादी है। उन्होंने अति सहजता से उत्तर दिया, 'मान लो यह अर्जुन का प्रारब्ध था, किन्तु युद्ध तो उसे करना ही पड़ता न! बिना युद्ध किये क्या वह विजयी होता?'

हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि माउण्ट एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचने का कोई सीधा-सपाट राजमार्ग नहीं है। एक साहसी, निर्भय एवं अदम्य उत्साह से भरा हुआ पर्वतारोही ही इस काल्पनिक लक्ष्य को सुखद यथार्थ में परिणत कर सकता है। तात्पर्य यह है कि अपने लक्ष्य तक पहँचने की तमन्ना रखनेवाले साधक को घोर पुरुषार्थ के मार्ग से गुजरना ही पड़ेगा।

अत: प्रारब्ध बनाम पुरुषार्थ कदापि विचारणीय विषय नहीं हो सकता। गीता स्पष्टत: घोषणा करती है कि जहाँ 'योगेश्वर कृष्ण' और 'धनुर्धर पार्थ' मिलेंगे, वहाँ श्री, विजय, विभूति और दृढ़नीति होगी। योगेश्वर कृष्ण हैं संसिद्ध गुरु और गाण्डीवधारी पार्थ है पुरुषार्थ का प्रतीक। गुरु तो साक्षात् कृष्ण हैं ही, पार्थ हमें बनना है। 'ब्रह्मणि आधाय कर्माणि' के भाव से गुरु के आदेशानुसार अपने कर्त्तव्य-कर्मों का सम्पादन करते हुए हमें चलते जाना है। यही पुरुषार्थ हमें गुरु-कृपा का पात्र बनाएगा, जो अन्तत: हमारे स्वान्त:स्थ दीप को प्रज्वलित कर हमें दिव्य प्रकाश से आलोकित एवं परमानन्द से आप्लावित कर देगा।

# योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

## सत्यम् गाथा–ऋषि की प्रशस्ति

पृष्ठ 40

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

सन् 2017 में स्वामी निरंजनानन्द जी योगक्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाओं के लिए पद्मभूषण सम्मान से अलंकृत हुए। मुंगेर में आयोजित सम्मान समारोह में बाल योग मित्र मण्डल के बच्चों ने स्वामीजी के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। इस गाथा में इन्हीं बच्चों की आपबीतियाँ और अनुभूतियाँ संकलित हैं जिनसे स्वामीजी के बालसुलभ चरित्र के अतिरिक्त उनकी एक बहुत बड़ी कृति भी उजागर होती है–हजारों-लाखों बच्चों के जीवन में संस्कार, स्वावलम्बन और राष्ट्र-संस्कृति-प्रेम का बीजारोपण।

नया प्रकाशन

**पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–**
**योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,** गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

## वेबसाइट

### www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

### योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

### आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725


# योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

| | |
|---|---|
| *जनवरी 19-21* | श्री यंत्र आराधना |
| *जनवरी 22* | बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस |
| *फरवरी 22- जून 10* | चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी) |
| *फरवरी 14* | बाल योग दिवस |
| *अप्रैल 8-14* | हठ योग यात्रा 1 एवं 2 |
| *अप्रैल 22-28* | हठ योग यात्रा 3 |
| *अगस्त 6-11* | क्रिया योग यात्रा 1<br>क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि |
| *अगस्त 20-25* | क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2 |
| *सितम्बर 17-23* | राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3 |
| *दिसम्बर 25* | स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस |
| *प्रत्येक शनिवार* | महामृत्युंजय हवन |
| *प्रत्येक एकादशी* | भगवद् गीता पाठ |
| *प्रत्येक पूर्णिमा* | सुन्दरकाण्ड पाठ |
| *प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख* | श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव |
| *प्रत्येक 12 तारीख* | अखण्ड रामचरितमानस पाठ |

**आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।**


**उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-**
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।